चिड़ियाघर

★

लेखक

पं० हरिशङ्कर शर्म्मा

★

प्रकाशक

गयाप्रसाद एण्ड संस, आगरा

विषय सूची

विषय			पृष्ठ

चिड़ियाघर

चहचहाता 'चिड़ियाघर'

स्वप्न के सुखमय संसार में, विश्व के विचित्र अद्भुतालय की—वाणिज्य-विलास, शिल्प-शाला, धर्म-धाम, समाज-सदन, राजनीति-निकेतन, अकिञ्चन-कुटीर, मज़दूर-मञ्ज़िल आदि-संस्थाएँ देखते-देखते जब जी ऊब उठा तो अपने राम सीधे साहित्योद्यान की ओर सिधारे, और सोचने लगे कि चलो, इस शुष्कवाद के जलहीन जलाशय से निकलकर सरसता के सुन्दर सरोवर में स्नान करें; भक्कड़ता के झाड़-खण्डों को झाड़कर सहृदयता के सुखद सुमनों की सुगन्ध सूंघें। अहा! साहित्योद्यान का सुहावना द्वार देखने ही योग्य था। उसकी सुन्दर सुषमा का विशद वर्णन करने के लिए, कवि-कुल-कैरव-कलाधर कालिदास की वरद वाणी चाहिये। क्या पूछते हो? साहित्योद्यान का दिव्य द्वार देखकर अपने राम चित्र लिखे-से रह गए! आँखें ठगी-सी ठिठक रहीं! चित्त चुपके-से चिपक गया!! पैरों ने आगे बढ़ने से इनकार कर दिया। इतने में ही उद्यान का अधिकारी आकर बोला—

"देखना है, तो आगे बढ़ो, नहीं तो दरवाज़ा बन्द होता है।"

मैंने कहा—"फ़ीस ?"

"फ़ीस-वीस कुछ नहीं, केवल सहृदयता का 'सार्टीफ़िकेट' साथ रखिए। अच्छा, यह तो बताइये, पहले आप इस विशाल बाग़ के किस भाग की सैर करेंगे ?"

"मैंने यह बाग़ पहले कभी नहीं देखा, इसलिए समझ में नहीं आता कि आपके इस सवाल का क्या जवाब दूँ।"

"अच्छा, बढ़िये आगे, और जो इच्छा हो सो देखिये।"

यह कहकर उस आदरणीय अधिकारी ने मुझे प्रधान द्वार द्वारा अन्दर पहुँचा दिया। अजीब नज़ारा था; अद्भुत दृश्य दिखाई देता था; गुल्म-लता, तरु-वल्लियों की असीम शोभा का ठिकाना न था। सुहावने वृक्षों और सुन्दर सुमनों की अपूर्व छटा मन को मुग्ध कर रही थी। कोयलों की कूक और कबूतरों की गुटरगूँ ने 'समाँ' बाँध रक्खा था। जगह-जगह जलाशय भरे हुए थे, झरने झर रहे थे, नाले बह रहे थे और सोते हिलोरें मार रहे थे। जिधर निगाह उठती थी, उधर ही आनन्द का आधिपत्य दिखाई देता था।

उद्यान के अन्दर घुसते ही सामने एक चहचहाता 'चिड़िया-घर' दिखाई दिया। मेरे हर्ष का ठिकाना न रहा! ख़ुशी का ख़ज़ाना मिल गया! आनन्द की गङ्गा उमड़ पड़ी! अन्धे को आँखें प्राप्त हो गईं। चलो, पहले इस 'चहचहाते चिड़ियाघर' की ही सैर करें, इसी की वर विचित्रता से अपने अतृप्त नयनों को तृप्त करें। पाटिया (साइन-बोर्ड) पर नागरी लिपि में कितने सुन्दर अक्षर लिखे हुए हैं, कैसा कौशल दिखाया गया है। साथी ने कहा—"अच्छा, आगे बढ़िये। देखिये—इस कमरे में हिन्दी का इतिहास सुरक्षित है; उसमें पुरानी लिपियों और

शिला-लेखों का संग्रह किया गया है। ठीक, परन्तु इन सब बातों को सोचने-समझने के लिये, न अपने राम के पास ओझाजी का हृदय है और न उनका मस्तिष्क ! चलो, और आगे बढ़ो।"

अच्छा ! यह दूसरा कमरा है। इसमें चन्द वरदायी से लेकर भारतेन्दु तक के समस्त साहित्य-सेवियों की स्वर्गीय आत्माएँ, अपनी-अपनी कृतियों पर अटल आसन जमाये विराजमान हैं।

"और आगे बढ़ो भाई, यह तो फ़ुरसत में देखने की चीज़ें हैं, एक-एक का अवलोकन करने के लिये महीनों और वर्षों चाहिएँ।"

अच्छा, यह कमरा क्या है ? ओ हो !—इसमें तो सम्पादकों के पिंजड़े रक्खे हैं। वाह ! यह बहार तो देखने ही लायक़ है। किसी की दुम से दावात बँधी हुई है, और कोई कान पर कलम रखकर कूद रहा है। किसी के पैरों में पिनों की पैंजनियाँ पड़ी हैं तो कोई पैंसिल को पंजों में दबाए डोलता है, किसी की क़ैंची क़यामत ढा रही है तो कोई पोथियों का पुलन्दा चोंच में दबाए घूमता-फिरता है। कोई पंछी पिंजड़े में पड़ा ग़रूर से ग़ुर्रा रहा है और कोई बेचारा हाथ जोड़कर 'हा-हा' खा रहा है। क्या ही विचित्र दृश्य है ! कैसा अजीब तमाशा है ! इन पिंजर-बद्ध पक्षियों के कमरे के आगे क्या है ? संवाददाताओं का सन्दूक़, लेखकों का पिटारा, ग्रन्थकारों की गठरी, समालोचकों की टोकरी और व्याख्याताओं का बंडल। अच्छा ! इस गद्य-गली को छोड़िये, पीछे—वापसी में देखेंगे, पहले पद्य-प्रासाद की ओर चलें—उसकी रङ्गत देखें।

ओहो ! यह है पद्य-प्रासाद ! इसमें तो भाँति-भाँति के कवि-कारण्डव और काव्य-कपोत किलोल कर रहे हैं। दूर-दूर के पद्य-प्रिय पक्षी प्रस्तुत हैं। यहाँ पखेरुओं के पंख-प्रदर्शन से ख़ूब आनन्द

आता होगा, बड़ी रौनक़ रहती होगी। अजी जनाब! रौनक़ की क्या पूछते हो, 'बहिश्त'-सी दिखाई देती है। फिर, आज तो इन कवियों का बहुत बड़ा सम्मेलन होने वाला है, खूब 'चोंच-भिड़न्त' होगी! ज़रा देखना तो सही, कैसा मज़ा आता है। हाँ, हज़रत! हमारे लिये तो यह बिलकुल ही एक नई बात होगी। अभी साढ़े तीन बजने में पन्द्रह मिनट बाक़ी हैं। आइये, यहाँ घास पर बैठ जायँ और तीन-चार घण्टे इस काव्य-कौतुक का आनन्द लूटें।

ठीक साढ़े तीन बजे कवि-सम्मेलन शुरू हुआ। सभापति का आसन गद्यपद्याचार्य 'गुरुवर गरुडदेव' ने ग्रहण किया। आपने अपने भावपूर्ण भाषण के अन्त में कहा—

"महाशयो, सौभाग्य से इस पद्य-प्रासाद में विविध प्रकार की बोलियाँ बोलने वाले, कृतविद्य कविवर उपस्थित हैं। सबको समान रूप से चहकने-चटखने और चहचहाने का मौक़ा दिया जायगा। बढ़िया बोलने वालों को, सोने-चाँदी की पैंजनियाँ पहनाई जायँगी और कण्ठ में कलाबतून के कण्ठे डाले जायँगे। देखना, गम्भीरता और सभ्यता हाथ से न जाने पावे।"

इतने ही में कतिपय 'साहित्य-ठूँठों' ने अपनी विद्वत्ता का बखान करते हुए, सभापति के सारगर्भित भाषण पर बड़बड़ाहट शुरू की! कर्णकटु काँव-काँव मचाई!—अपनी प्रदग्ध प्रतिभा की प्रचण्डाग्नि से काव्य-कलिका को झुलसाना चाहा। गुरु गरुड़जी के गौरव-गुलाल पर गन्दगी के गट्ठर गिराने की चेष्टा की। गुबरीला पद्म पर प्रभुता पाने का प्रयास करने लगा, और स्यार सिंह पर दुलत्ती झाड़ने को समुत्सुक हुआ! परन्तु सब निष्फल! सब व्यर्थ! उपस्थित कवि-वृन्द ने सारे 'साहित्य-ठूँठों का' ठाठ बिगाड़ दिया; बोलती बन्द करदी! जिससे फिर अनर्गल आलाप करने का हौसला ही न हुआ।

हाँ, तो सबसे पहले सभापतिजी के आदेशानुसार, प्रार्थना-पन्थी 'कवि कंकजी' ने अपनी कविता सुनानी शुरू की, आपके खड़े होते ही पंखों की फड़ाफड़ और तुण्डों की तड़ातड़ से गगन-मण्डल गूँज उठा। आपने आँखें मींच और गला भींच कर नीचे लिखे पद्यों का पाठ प्रारम्भ किया—

अखिलेश, सर्वेश, प्रजेश पालकम्,
विश्वेश, कुल्लेश, कलेश घालकम्।
मोटर, घड़ी, इञ्जन आदि चालकम्,
विपत्ति, सङ्कट विकट्ट टालकम्॥

× × × ×

रघुराज व्रजराज गणेश गौरी।

श्री....................

यहाँ सभापति श्रीगरुड़देवजी ने कवि को रोककर कहा—"महाशय, आप अपनी कविताएँ सुनाते हैं या 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ करते हैं? काव्य-कानन में किलोल करने आये हैं, या साम्प्रदायिकता की सड़क पर सपाटे भरने चले हैं?" इस पर कवि कंकजी अप्रसन्न हो गये और क्रुद्ध होकर कहने लगे—"जब तक मेरी 'प्रार्थना-पञ्चशती' समाप्त न हो जायगी तब तक आगे न बढ़ूँगा।" अस्तु, सभापतिजी के आदेशानुसार आपको बैठ जाना पड़ा।

कवि कङ्कजी के प्रस्थान करते ही रसराज-रसिक 'केकी कविजी' की कुलबुलाहट प्रारम्भ हुई। आपकी अदा निराली थी। कभी नाक पर हाथ रखते थे, कभी कर से कमर टटोलते थे। कभी लचकते थे, कभी मचकते थे, कभी फुदकते थे, कभी कुदकते थे, कभी भृकुटी के भाले चलाते थे और कभी कटाक्ष के कारतूस छोड़ते थे। आपने अपने रङ्ग में अद्भुत आलाप करते हुए कहा—

कामिनी कबूतरी के कलित कलेवर को
देख-देख पंछियों के पंख झड़ जाते हैं।
श्वेत वक-वृन्द की तो बात ही न पूछो कुछ
काले-काले कौए भी पिछाड़ी पड़ जाते हैं।
उद्धत उलूक खोजते हैं रात-भर उसे
गिद्ध 'धृष्टनायक' की भाँति अड़ जाते हैं।
आँख, नाक, चोंच, पंख, पग-प्रतियोगिता में
कवियों के सारे उपमान सड़ जाते हैं।

केकी कवि की इस शृङ्गारमयी कविता से सारे कवि-समाज में हलचल मच गई, चारों ओर से 'अश्लील'! 'अश्लील'! की आवाज़ें आने लगीं। सैकड़ों कबूतरियाँ कवियों को कोसती हुई उड़न्छू हो गईं! शोक! "देवियों का ऐसा निरादर! इतना अपमान! बन्द करो इस कुत्सित कवि-सम्मेलन को! रोको ऐसी गन्दी गढ़न्त को! मत बकने दो इस प्रकार की बेजोड़ बातें"—यही चर्चा सब ओर से सुनाई पड़ रही थी।

बड़ी कठिनाई से प्रेसीडेण्ट मिस्टर गरुड़देव ने शान्ति स्थापित की, और बड़े बलपूर्वक कहा—"आगे से ऐसी बेहूदी और अश्लील कविताएँ कोई न सुनावे। हाल में ही इस प्रकार के असदव्यवहार से श्रीमती कपोत-कान्ताओं को मर्मान्तिक वेदना पहुँची है, जिससे हमें भी बड़ा दुःख है, और होना ही चाहिए। आशा है, आगे ऐसा स्वेच्छाचार न होगा।"

इसके पश्चात् धर्मध्वजी कवि 'बगुलाभक्तजी' उठे। आपके शब्द-शब्द में साम्प्रदायिकता की सनक और कट्टरता की कड़क दिखाई देती थी। सबसे प्रथम आपने डबडबाती हुई आँखों और गिड़-गिड़ाती हुई वाणी से धर्मप्राण श्रोताओं से अपील करते हुए नीचे लिखी कविता पढ़ी—

छूत-छात छोड़ना न भूल करके भी भाई
पतितों, अछूतों को न उठने उठाने दो।
विधवा-विवाह करना है घोर पाप, इसे
कर्मवीरो, कभी कल्पना में भी न आने दो।
बिछुड़े हुओं को अपनाना नीचता है निरी
ऐसी अवनति का न हुल्लड़ मचाने दो।
धर्म को विसार कर जाति को जिलाओ मत
कल मरती हो उसे आज मर जाने दो।

वृद्ध वशिष्ठ बगुलाभक्तजी की कविता से सभा-मण्डप में हर्ष-विषाद का तुमुल-युद्ध छिड़ गया। सुधारक-दल का कोप-कोदण्ड तन गया, किन्तु कट्टरपन्थियों ने खुशी के नगाड़े पीटने शुरू किये। सुधार और बिगाड़ के बीच खूब 'कुड़ुमधूँ' हुई। चोंचों की चेंचें और पंखों की फड़फड़ाहट ने प्रशान्त वायु-मण्डल विलोडित कर दिया। गरुड़देव फिर उठे और अपने भाषण के आकर्षण से, येन केन प्रकारेण, बड़ी कठिनतापूर्वक शान्ति स्थापित करने में समर्थ हुए।

थोड़ी देर बाद सुधारक-दल के कवियों ने फिर रामरौला मचाया और सभापतिजी से बड़े आग्रहपूर्वक कहा—"अबकी बार सुधारकों के आधार और उन्नति के अवतार प्रसिद्ध समाज-संशोधक कविवर 'काककिशोरजी' को कविता पढ़ने का अवसर दिया जाय।" 'अवश्य दिया जाय', 'ज़रूर दिया जाय', 'फ़ौरन दिया जाय', 'जी खोलकर दिया जाय', 'क्यों न दिया जाय ?' की आवेशपूर्ण ऊँची आवाज़ों ने गरुड़गोविन्दजी को मजबूर कर दिया, और उनकी आज्ञा से कविवर काककिशोरजी ने नीचे लिखी कविता सुनानी शुरू की—

छूत-छात का भूत भगाकर, सब के संग खालेंगे हम,
उन्नति की घुड़दौड़ मची है, पीछे नहीं रहेंगे हम।
विधवाओं के ब्याह करेंगे, बिछुड़ों को अपनाएंगे,
जात-पाँत का तन्तु तोड़कर, एक भाव दरसाएँगे।

"बैठ जाइये! बैठ जाइये! विश्व-विनाशक विषैले वायु से इस विशुद्ध वातावरण को विषाक्त न बनाइये, बैठ जाइये! इन तरक्क़ी के तरानों को सुनकर कानों के परदे फटे जाते हैं; हिम्मत-वालों के हौसले घटे जाते हैं; धर्मप्राणों के पर कटे जाते हैं; बैठ जाइये!" निदान कट्टर कवियों की 'काँव-काँव' ने काक-कवि का कलेजा दहला दिया! कविता की कमर तोड़ दी! फ़साहत की हँडिया फोड़ दी! विरोध का बेडौल बबंडर देखकर बेचारे काक-कवि अपना-सा मुँह लेकर अवाक् बैठ गये।

सभापति श्रीगरुड़देवजी बोले—"महाशयो, मैं पहले ही कह चुका हूँ कि आप लोग कमनीय काव्य-कानन को छोड़कर सम्प्रदायवाद के बीहड़ वन में न भटकिये, साहित्य-संलाप त्याग कर मत-पन्थों से न अटकिये। इससे सभा में अत्यन्त असन्तोष और असीम असद्भाव उत्पन्न होता है। समाज-सुधार का स्थान यह नहीं है; उसके लिए आपको संशोधक संस्थाओं से सहायता प्राप्त करनी होगी। आशा है, आगे जो कविजन अपनी कविताएँ सुनाएंगे, उनमें ऐसी वाहियात बातें न आने पाएंगी। अस्तु, अब सुप्रसिद्ध देशभक्त श्रीयुत 'कीर कविजी' अपनी रचना सुनाएँगे, आप लोग ध्यानपूर्वक सुनें।" इसके पश्चात् स्वतन्त्रता-सेवी श्रीयुत् कीर कवि ने दृग दमका तथा चोंच चमका कर नीचे लिखी रागनी रागी—

आज़ाद है हमारा हिन्दोसतान यारो,
मिल-जुल के देशवासी, ऐसी सुविधि विचारो।

सब जेल में पड़ो तुम, हक़ के लिए लड़ो तुम,
आपत्ति में अड़ो तुम, पर क़ौम को उबारो।
खुश होके मार खाओ, भारत के गीत गाओ,
हँस बेड़ियाँ बजाओ, दुखिया के दुःख टारो।

"वाह सभापतिजी, वाह! क्या आपने हमें यहाँ प्रीज़न के पिंजड़े में अथवा कारागार के कठहरे में बन्द करने को बुलाया है? भाड़ में जाय भारत और भट्टी में झुके आज़ादी! अजी जनाब! हम यहाँ क़ौम का उद्धार करने आए हैं या काव्य-कानन में कुदकने-फुदकने! याद रहे, अगर किसी 'सी० आई० डी०'-वाले ने सुन लिया तो बची-खुची स्वाधीनता भी नष्ट हो जायगी! लेने के देने पड़ जायँगे! हमें इस बकवाद की ज़रा भी ज़रूरत नहीं है, अपने राम तो आशियानों में पंख पसार कर सोते और आनन्द के बीज बोते हैं।"

कीर कवि की इस कड़ी कविता को सुनकर व्योम-विहारी गरुड़देवजी को भी ग़ुस्सा आगया। उन्होंने 'लायलटी' पर लम्बा लेक्चर झाड़ते और क्रोध से मुँह फाड़ते हुए कहा—"कविवरो, तुम्हें इस व्यर्थवाद से क्या? हिन्दुस्तान के आज़ाद होने न होने से तुम्हारा प्रयोजन? तुम तो अपने उद्यान में अब भी स्वाधीन हो, और आगे भी रहोगे। अगर तुम्हारा अभिप्राय खमण्डल में खलबली मचाना है, तो याद रक्खो मैं खगराज हूँ, ऐसा कभी न होने दूंगा। क्या तुम मेरा साम्राज्य छीनना चाहते हो? धिक्कार है तुमको, और तुम्हारे विचित्र विचार को!"

सभापति श्रीगरुड़जी के इतना उचारते ही चारों ओर से 'छिमान् महाराज!', 'छिमान् महाराज!!' की आवाज़ें आने लगीं। कीर कवि ने भी हक़ीर होकर आप से क्षमा याचना की।

तदनन्तर सभापतिजी के आदेशानुसार साँग-सनेही कविवर

'कुलंगजी' खड़े हुए। आपने कड़ाके की आवाज़ में झड़ाके से अपना अद्भुत आलाप आरम्भ किया—

बड़ों की बात बड़ी है, घड़े में पड़ी घड़ी है,
है ऊदल कहा बिचारो, भयो जो आगे ठारो,
न देखो रूप हमारो—
और मारदेहु मर जाहि ताहि; डर जाहि न
हिम्मत हारो—धिनाधिन ताक्थेई ता।

कुलंग कवि की करारी कविता सुनते ही सभा में सन्नाटा छा गया! उपहार में पैंजनियों के पुलन्दे पड़ने लगे, 'वाह-वाह' की धूम मच गयी! 'वंसमोर' का शोर होने लगा। एक-एक पंक्ति अनेक बार सुनी जाने लगी। सभापतिजी सोचने लगे, कहीं इस घोर वीर रस की कविता से उत्तेजित होकर कोमल काय कवि-कुमार आपस में ही सिर-फुटौअल न कर डालें अतएव आपने कुलंग कवि को अधवर में ही बैठा दिया, जिससे सहृदय काव्य-मर्मज्ञ उनकी क्रान्ति-कारिणी कलित कविता सुनने के लिए मुँह बाये रह गये!

इसके बाद पर-उपदेश-कुशल कवि 'कारण्डवजी' अपनी कविता-कौमुदी की अपूर्व छटा छिटकाने के लिए खड़े हुए। आप बहुत देर से व्याकुल बैल की तरह रस्सा तुड़ा रहे थे। आज्ञा किसी अन्य कवि को दी जाती थी, उठ आप खड़े होते थे। खैर, अबकी बार राम-राम करके आपका अवसर आ ही गया। कारण्डवजी ने करताल कर में लेकर मूंछे मरोड़ते, आँखें सिकोड़ते और तान तोड़ते हुये, साफ़े को सम्हाल-सम्हाल कर, ऊँची आवाज़ से, नीचे लिखी कविता कथ कर सुनाई—

धरम के कारणें जी, भाइयो! तन-मन-धन सब दे दो।
रच्छा करो धरम की धुंन ते, धरम बड़ो है भाई,

धरम के कारन धरमदत्त ने देखो जान गँवाई,
धरम के कारणें जी..................................
धरम-धरम की धूम मचाओ, धरम-धुजा फहराओ,
धरम ओढ़लो, धरम बिछालो, धरमी सब बन जाओ,
धरम के कारणें जी, धरम के कारणें जी—
धरम के कारणें जी; भाइयो, तन-मन-धन सब दे दो।

कवि कारण्डवजी अभी अपनी भूरि भाव-भरित कविता की दो-तीन कड़ियाँ ही पढ़ने पाए थे कि लोग सरसे साफ़ा बाँध, मोटा सोटा ले और गले में गुलूबन्द लपेट कर धर्म पर बलिदान होने को आ खड़े हुए! 'जीवन-दान', 'जीवन-दान' की आवाज़ें आने लगीं, 'धन्य-धन्य' की धूम मच गई! सभापतिजी ने भी, कारण्डवजी की चोंच चूमकर स्पष्ट शब्दों में कहा—"भाई, बस, इस आधुनिक युग में आप ही एक कामयाब कवि हैं! विराजिये, इस समय शीघ्रता है। आपकी 'पद्य-पाढ़न्त के लिये तो पूरे पाँच घंटे दिये जायँ, तब कहीं श्रोतृ-समुदाय की संतृप्ति हो। ओ हो!—आप की कविता क्या है, 'फ़ायर-ब्रिग्रेड़' का इञ्जन या तूफ़ान-ट्रेन का भोंपू है। धर्म, जिस पर जगत् स्थिर है, उसके आप जैसे परम प्रवीण प्रचारक धन्य हैं!"

कवि कारण्डवजी की 'कुकडूं-कूं' समाप्त होते ही, घटना-घन घमण्ड घोंघा घुग्घू घासलेटानन्दजी अपनी अकड़ में घोर घोषणा करते हुए, उसी प्रकार बिना बुलाए पञ्च बन मञ्च पर आ आरूढ़ हुए जिस प्रकार 'साइमन-सप्तक' भारत के भाल पर आ धमका था! सभापति श्रीगरुड़देवजी ने गुस्से से गुर्राते हुए कहा—"अच्छा, पढ़िये, पहले आप ही पढ़िये।" तब श्री घासलेटानन्दजी ने अगाई-पिछाई तोड़, और कुण्डे-कुण्डी फोड़

कर, साहित्य-क्षेत्र का सुविस्तीर्ण मैदान मार, महा मोद मनाते हुए, नीचे लिखा अद्भुत आलाप करना शुरू किया—

उस भ्रष्ट-भवन की कथा सुनो, वेश्याओं के अड्डे देखो,
लो, लोट 'लाटरी' के लुटते, बाज़ारों में सट्टे देखो।
लड़कों पर प्यार करें टीचर, वह चाकलेट-चरचा सुनलो,
विधवा व्यभिचार-प्रचार करें, सो सुनो, शोक से सिर धुनलो।
हाँ एक-एक करके तुमको, सब विस्तृत बात बताता हूँ,
परदे में पाप करें कैसे? सो सब तुमको समझाता हूँ।

श्रीघासलेटानन्दजी की अभी भूमिका भी समाप्त नहीं हुई थी कि काक, कंक, कारण्डव, कीर आदि कवियों ने कोपपूर्ण 'काँव-काँव' करनी शुरू कर दी। "नहीं, नहीं, हम यहाँ ऐसी विचित्र विधि सुनना नहीं चाहते। घासलेटानन्दजी बैठ जाइये! इस सारहीन सिखावन से संसार को बख्शिये।" इसके विपरीत दूसरे कवियों ने कहा—"कहिये, कहिये, ज़रूर कहिये! बराबर सिलासिला जारी रखिये। जाति-जागृति का जतन जितनी जल्दी जनता को जताया जाय उतना ही अच्छा है। कहिये, कहिये, घासलेटानन्दजी कहिये"—की आवाज़ों ने कविवरजी का नाक में दम कर दिया। वे 'हाँ'-'ना' की खींचातानी में 'त्रिशंकु' की तरह बीच में ही लटक गए। युगल चुम्बक के मध्य पड़ी सुई की तरह सिटपिटाने लगे! अड़ें या बढ़ें, हटें या डटें, चहकें या बहकें, जमें या रमें—उन्हें कुछ न सूझ पड़ा। अन्त में श्रीसभापतिजी के आदेश से आप अधवर में ही बैठ गए और विरोधियों की बुद्धि पर बड़बड़ाते हुए अपनी अक़्ल की स्तुति करने लगे।

इतने कवियों की कविताएँ सुनी जाने के बाद 'टकापंथ-प्रवर्त्तक' कविवर 'कुक्कुटराजे' काव्य-कानन में कूदे। आपके

'कुकड़ूँकूँ' करते ही जनता ने हर्ष-ध्वनि की, और उत्सुकता के साथ वह उनकी ओर देखने लगी! कुक्कुट कविजी 'बहर-ए-तवील' में बलन्द बाँग देते हुए बोले—

वोट दे दो रे, भाई, भिखारीमल को।
लोगों की बातों में हरगिज़ न आओ,
खद्दर न पहनो, न जेलों में जाओ;
है, चुङ्गी-चुनाव चलो कल को,
वोट दे दो रे, भाई, भिखारीमल को।
चढ़-बढ़ के लाला ने दावत खिलाईं,
कोठी, हवेली, दुकानें बनाईं,
सीधे हैं, जानें न छल-बल को—
वोट दे दो रे, भाई, भिखारीमल को।

अहा! कुक्कुट कवि की इस परोपकार-प्रवृत्ति पर सब कवियों ने साधुवाद की सिला सरकानी शुरू की, 'मरहबा' की मटकी फोड़ दी और 'वाह-वाह' की बाँह तोड़ दी! "धन्य हैं ऐसे अशरण शरण कविराज! देखिए न, सेठजी के लिये, आपके दराज़ दिल-दालान में कैसे-कैसे प्रेम के पीपे भरे पड़े हैं। वाह! वाह! खूब!"

इसके अनंतर सभापतिजी ने कविरत्न 'क्रौञ्चजी' से कविता सुनाने को कहा। परन्तु वह बोले—"जब तक मेरे लिये आनन्द-पूर्वक आसीन होने को विशुद्ध व्यास-गद्दी न दी जायगी, तब तक मैं अपनी कथा कदापि नहीं सुना सकता। हाँ, हारमोनियम और तबले की भी व्यवस्था करनी होगी।" सभापतिजी ने बात की बात में सब समुचित प्रबन्ध कर दिया। तब कविजी ने ऊँची आवाज़ से नीचे लिखी कविता गाकर सुनाई—

तब बोले साधू सुबुध, सुनो सभी धर ध्यान,
कथा आज की का विषय; है अध्यातम ज्ञान।

संसार दुखों का सागर है, आओ, मिल-जुल सब स्वर्ग चलें,
सानंद रहें, नंदन-वन में, लखि-लखि हमको सब हाथ मलें।
हम धर्म-ध्वजा की धज्जी हैं, उपकार-'कार' के 'टायर' हैं,
कविता-कुर्सी के पाये हैं, सारङ्गी के सब 'वायर'. हैं।
अब उठो, बाँध लो सब बिस्तर, उस अमरपुरी के जाने को,
तुलसी, केशव और सूर जहाँ, आएँगे हाथ मिलाने को।

क्रौञ्च कवि की कविता सुनकर लोग मारे क्रोध के काँपने लगे। "आया कहीं का कठमुल्ला! हमें स्वर्ग ले जाना चाहता है। अरे पहले इस दुनिया का आया-गया तो देख लें, यहाँ तो विजय का बैंड बजादें, तब कहीं स्वर्ग-नरक का नम्बर आएगा। धिक्कार! धिक्कार! ऐसी क़ातिल कविताओं की ज़रूरत नहीं है। सभापतिजी, बन्द कीजिए! वैराग्य के इस विषैले विषधर को बिल में ही बिलबिलाने दीजिये। उपरामता के उज़बक उल्लू को प्रतिभा के प्रकाश में न आने दीजिये।"

बूढ़े सभापतिजी को क्रौञ्च कवि की कथा में बड़ा आनन्द आया, आपने बार-बार चोंच चलाई और गरदन हिलाई। परन्तु जनता के वैराग्य-विरोधी होने के कारण क्रौञ्चजी की मुख-मढ़ी पर, मजबूरन '१४४ लीवर' का ताला ठोंक देना पड़ा।

इस समय सभापतिजी ने कहा—"महाशयो, वक़्त अधिक हो गया है, इसलिए कविवर 'कोकिलकुमार' और 'कुल्लूक' कविराज इन दो कवियों को अपनी-अपनी कविताएँ सुनाने का और अवसर दिया जायगा। बस, फिर पदक-पुरस्कार की सूचना देकर सम्मेलन समाप्त हो जायगा। अब 'प्रतिबिम्ब-पन्थी' काव्य-कानन-केसरी कवि 'कोकिल-कुमारजी' अपनी कविता सुनावें और अपने काव्य-कल्पतरु की छबीली छाया से सारे सभ्य-समाज को सुख पहुँचावें।" कोकिल-कुमारजी ने अपनी निगूढ़तम रुचिर

रचना को सुनाते-सुनाते, सब लोगों को अज्ञेयवाद-वारिधि में डुबकी लगाने का आनन्द प्राप्त कराया। कोकिल-कुमारजी ने अप-टू-डेट फ़ैशन की फबीली फ़साहत के फन्दे में फँसकर नीचे लिखी अलौकिक कविता पढ़ी—

विरद वाद्य मृदु मन्द अचलता के दृगता अञ्चल में,
सुस्मित मत विस्मृत बाला के अनुनय अन्तस्तल में,
अभिधा की अनन्त आभा में सविधा के साधन में,
विभावरी, आभरी, सनिलभा के उदोत आनन में।

× × ×

सुरति सदय सन्दर्भ सुसंयत नय नवधा नागर में,
विश्व-विमोहन विपुल व्यथा के प्रभुता पांशु पगर में,
वरद विभा के वक्षस्थल में मृग-मरीचिका तट पर,
तरुणी के घटना-घूँघट पर तरंगिणी के तट पर।

× × ×

सौख्य सुधामय मनस्विता में, मानहीन मानस में,
भौतिक तारतम्य सत्ता के पुण्य प्रेम पारस में,
प्रवर्त्तिता प्राञ्जलि नलिनी के नव नीरव गायन में,
सभ्य, सुरम्य, गम्य कानन में प्रतिभापूर्ण पवन में।

कवि कोकिल-कुमार की दार्शनिकता देखकर सारे सभासद दंग रह गये, सब लोग अपनी अड़ियल अक़्ल को धिक्कारते हुए उनकी पुण्य-पंक्तियों की प्रशंसा करने लगे। 'धन्यवाद' के धुँगार और 'वाह-वाह' के बघार से सारा समाज सौरभित हो उठा!

सभापति श्री गरुड़देवजी तो इस कविता के परम दार्शनिक तत्त्व को समझने के लिए समाधि लगा गए, परन्तु तो भी यह नितान्त निगूढ़ 'रहस्य' उनके महा मस्तिष्क में न आया। यहाँ तक कि उनकी प्रदीप्त प्रतिभा पर कविता के आध्यात्मिक अर्थ

की 'छाया' भी न पड़ी। अन्त में आप निराशावाद के वायु में बह-कर आगे बढ़े और "खैर" कहकर 'श्रीकुल्लूक' कवि से पद्य-पाठ करने की प्रार्थना की।

कुल्लूक कविजी अपनी कलम-कटारी और स्वछन्दता की आरी लेकर कविता-कामिनी के कलित कलेवर की ओर झपटे! वह बेचारी बलात्कार से बचने के लिये "त्राहि-त्राहि" करने और बिना आई मरने लगी। करुणा का सागर उमड़ उठा, और दयालुओं का दिल घुमड़ उठा! अस्तु, सबसे प्रथम कविवर कुल्लूकजी ने जनता को नीचे लिखा स्वच्छन्द छन्द सुनाकर दोनों हाथों से 'वाह-वाह' बटोरनी शुरू की, आप अपनी शान में बोले—

खट्वा!

ओहो! चतुष्पदी, निष्पदी तथा—
निर्भ्रान्त, अलक्षिता;—एवम् सापेक्ष सत्ता, सुरम्या—
महत्त्वमय—'मत्कुण'-सेविता
'तक्षा' एवम्—
रथकार...................शयनाधिकार संयुक्ता
सम्पृक्ता—सुकीर्तिता!
सुधीन्द्र, 'रज्जु'—'रसरी'!!
रता—नता; एवम् 'अवनता'!!!

कुल्लूक कवि की वदन-बाँबी से क्रान्ति-कारिणी कविता-काकोदरी के निकलते ही सारे कविसमाज में आनन्द की आँधी आ गई! प्रसन्नता का पुल टूट पड़ा! साधुवादों का पज़ावा लग गया! "वाह कुल्लूकजी, क्या कहने हैं? आपने तो छन्द-छैला की छाती में छुरी भौंक दी, पिंगल के पिटारे पर पत्थर पटक दिए, अलंकार अलबेले की अंतड़ियाँ निकाल लीं, रस में राख

मिलादी और भावों को भट्टी में भून दिया।"

बड़ा ऊधम मचा, पार्टीबन्दी के पटाख़े और गुट्टबाज़ी के गोले छूटने लगे। वाग्बाणों का वर्षा तथा विरोध के बबंडर ने नाक में दम कर दिया!

सभापति श्री गरुड़देवजी इस काव्य-विप्लव को देख कर दङ्ग रह गये! कुल्लूक कवि की कविता हुई या विद्रोह की बारूद जल उठी! इसे कवि-सम्मेलन कहें या 'अनारकी' का अड्डा! सहृदयता है या संगदिली? शान्त! शान्त! मित्रो, शान्त! सज्जनो, शान्त!—देखो, कवि-सम्मेलन में कविता-कामिनी पर अत्याचार न करो, इस अनघा अबला को अपने आवेशपूर्ण कोप-कुल्हाड़े का दुर्लक्ष्य न बनाओ। ठहरो, सुनो! मैं अपना अन्तिम भाषण स्थगित कर पदक-पुरस्कार की घोषणा करता हूँ—

"कविराज कङ्कदेव, कविरत्न क्रौञ्च तथा कविवर कारण्डव-जी इन तीन कविवरों की कविता सर्वोत्तम रही, इन्हें रत्न-जटित हारों की लड़ियाँ तथा स्वर्णमय पैंजनियाँ प्रदान की जाएँगी। अब सबको धन्यवाद देकर सभा विसर्जित होती है।"

सभापतिजी की उपहार-घोषणा सुनते ही चारों ओर से "और हम?" "और हम?" का तूफ़ान उठ खड़ा हुआ। "इतने कवियों में से केवल तीन! ऐसा अत्याचार! इतना अन्धेर! यह जुल्म!! पकड़लो पक्षपाती प्रेसीडेण्ट को, मारो मनहूस को, फोड़ दो खोपड़ी, तोड़ दो तोमड़ी! आया कहीं का साहित्य-सिरकटा! देखो, भागा, दुम दबाकर भागा, मुँह छिपा कर निकला,—पकड़ो-दौड़ो, निकल न जाय, उड़ न जाय, गर्दन पकड़ लो, क्या हमने कविताएँ नहीं सुनाईं? हमने दिमाग़ का सेरों खून खर्च नहीं किया? क्या हम कवि नहीं हैं? हमको पुरस्कार क्यों नहीं? मारो, मारो, देखना

कहीं भाग न जाय। भागा, पकड़ो, पकड़ो!" निदान इस समय कवि-सम्मेलन में ऐसा धूम-धड़ाका हुआ, ऐसा शोर-सनाका मचा, इतना तूफ़ान-ए-बदतमीज़ी उठा कि अपने राम की निद्रा टूट गई, सारा स्वप्नमय साहित्य-संसार नष्ट हो गया! अदृश्य जीवन के छायावाद के बदले दृश्यमान जगत् का जड़वाद दिखाई देने लगा। कवि कारण्डवों की कल्पना कुरंगी की कुचालों के स्थान पर दुरंगी दुनिया सामने आ गई। उठा, शौच-बाधा से निवृत्त हुआ; कलेवा किया और अपने काम में लग गया।

लीडर-लीला

लीडर एक ख़ास क़िस्म का समझदार जन्तु होता है, जो हर मुल्क और मिल्लत में पाया जाता है। उसे क़ौम के सर पर सवार होना और सभा-सोसाइटियों के मैदान में दौड़ना बहुत पसन्द है। उसकी शक्ल-ओ-सूरत हज़रत इन्सान से बिल्कुल मिलती-जुलती है। वह गरमियों में अक्सर पहाड़ों पर किलोल करता मगर जाड़ों में नीचे उतर आता है। देखने में लीडर सादा-सा दिखाई देता है, पर हक़ीकत में वह वैसा नहीं है। खाने की चीज़ों में उसे सेव, सन्तरा, अंगूर, केले, अनार वग़ैरह क़ीमती फल ज़्यादा पसन्द हैं। दूध तो उसकी ख़ास ग़िज़ा है। मौक़ा पड़ने पर ग़ल्ले के पूड़ी-पकवान भी गले में उतार लेता है, मगर बहुत ख़ुशी से नहीं!

कहने को तो लीडर जन्तु है, मगर उसमें ख़ुददारी का जज़बा खूब जोशज़न रहता है। वह अपने खयाल के खिलाफ़ न कुछ सुन सकता है, और न पोज़ीशन को कम होते देख सकता है। जिस तरह सरकार को सोते-जागते, उठते-बैठते, 'पीस एण्ड आर्डर' (शान्ति और सुव्यवस्था) का ध्यान रहता है, उसी तरह लीडर अपनी तक़रीर और तारीफ़ अख़बारों में छपी देखने के लिये फ़िकरमन्द नज़र आता है। वह औरों को अपने पीछे घसीटता मगर खुद किसी के साथ खिचड़ना पसन्द नहीं करता। जिस वक़्त इस अजीब जन्तु के जिगर में क़ौम का दर्द उठता है, उस वक़्त वह इनता बेताब हो जाता है कि कभी तारघर को ओर दौड़ता है और कभी डाकखाने की ओर कबड्डी भरता है। ज़्यादा दर्द होने की हालत में उसकी बेचैनी का ठिकाना नहीं

रहता। यहाँ तक कि बड़े-बड़े मजमों में खड़ा होकर बेतहाशा चीखता-चिंघाड़ता है। टेबुल पर हाथ मारता है और ज़मीन पर पाँव फटकारता है। आँखें सुर्ख़ कर लेता और दाँत पीसने लगता है। मुँह बनाता और हाथ घुमाता है। इधर को झुकता है और उधर को झूमता है। इसकी ऐसी हौलनाक हालत देखकर लोग उसके पास पानी या दूध का प्याला रख आते हैं जिसे वह चुस्की ले-ले कर पीता मगर चीख़ना-चिल्लाना बन्द नहीं करता।

कभी-कभी जब इस जन्तु की परेशानी, 'ख़ूँख़्वारी' में तबदील हो जाती है तो उसके लिये उसे मियादे मुक़र्रंरा के लिये लाल फाटकके बड़े बाड़े में बन्द रहना पड़ता है, जहाँ न हस्व ख़्वाहिश दाना-चारा मिलता है और न मज़ेदार मैदान ही नसीब होता है। इस दुनिया में आकर पहले तो लीडर गरजता-गुर्राता है, मगर कुछ दिनों बाद उसकी हालत पालतू बकरी की तरह हो जाती है।

यह अजीब जन्तु अपने पाँवों पर चलना बहुत कम पसन्द करता है। रेल के गुदगुदे गद्दे और मोटरों के मुलायम तकिये देखकर उसकी तबियत बाग़बाग़ हो जाती है, हवाई जहाज की हवा खाने और उसी में इधर-उधर घूमने के लिये वह अत्यन्त उत्सुक दिखाई देता है। घटिया सवारियों पर सवार होना उसे अच्छा नहीं लगता बल्कि, वह वैसा करना 'कसर-ए-शान समझता है।

लीडर में एक बड़ी खसूसियत है। अपने बुलावे की डाक द्वारा सूचना पाकर उसकी 'सेहत ख़राब' हो जाती है और 'अदीम-उल-फ़ुरसती' सामने आजाती है। मगर ज्यों ही अर-जेण्ट टेलीग्राम पहुँचा त्यों ही वह तन्दुरुस्त हुआ और उसने अपनी रवानगी का तार खटखटाया! दुनिया इधर से उधर

हो जाय पर लीडरी तार का कुतार न होना चाहिये। अगर रवानगी का तार पा बहुत-से लोग, फूल-माला लेकर, 'इस्तक़बाल' के लिये हवाई अड्डे या रेलवे स्टेशन पर नहीं पहुँचते, तो लीडर बुरी तरह बड़बड़ाता और बिदक जाता है। कभी-कभी तो उलटा वापस होते हुए भी देखा गया है।

लीडर जन्तु सड़ी-गली हवेलियों में रहना पसन्द नहीं करता। उसे फ़र्स्ट-क्लास कोठी के बिना चैन नहीं मिलता और न नींद आती है। वह बातें करने में बड़ा कंजूस होता है, छोटे लोगों को तो पास भी नहीं फटकने देता। हाँ, कुछ बड़े आदमियों से, घड़ी सामने रखकर, थोड़ी देर, गुफ़्तगू करने में ज़्यादा हरज नहीं समझता।

ओहो! जिस समय इसे '१४४' नम्बर की लाल झंडी दिखाई जाती है, उस समय तो उसकी वही हालत हो जाती है जो बालछड़ या छारछबीला सूँघने वाली बिल्ली की होती है। कभी वह झंडी को पकड़ने के लिए दौड़ता है, कभी पीछे खिसक जाता है, कभी उछलता है, कभी कूदता है और कभी दूर से गुर्रा कर रह जाता है।

जिस प्रकार भेड़िया भेड़ को पुचकारता है, उसी प्रकार लीडर पब्लिक के पैसे पर प्यार करता है। हिसाब-फ़हमी का प्रश्न उसकी 'इन्सल्ट' और जीवन-मरण की समस्या है। बाहरी दुनिया में लोगों को लीडर जैसा पुरजोश दिखाई देता है, वैसा वह अपनी गुफ़ा में नहीं नज़र आता। क्योंकि उसकी घरेलू और बहरेलू दो तरह की ज़िन्दगी होती है। जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते वे अक्सर धोखा खा जाते और तकलीफ़ उठाते हैं।

लीडर जन्तु के मिलने-जुलने के भी कई तरीक़े हैं। किसी से वह खिल-खिलाकर 'शेकदुम' करता है, किसी के साथ आधी

हँसी हंसता है, किसी के आगे उदासीनता दरसाता और किसी के समक्ष मुँह फुला कर और भौंह चढ़ाकर अपने मनोभाव प्रकट करता है। जिसके भाग्य में जैसा बदा हो वैसा ही उसके साथ व्यवहार होता है। साधारण लोगों की शक्लों को जानते-बूझते भूल जाना और उनके किसी ख़त-पत्र का उत्तर न देना लीडरेन्द्र की ख़ास ख़सूसियत समझनी चाहिये। लीडर की पोशाक बड़ी विचित्र होती है। परिस्थिति को देख उसे रंग बदलना खूब आता है। कभी वह बढ़िया लिबास इख़्तियार करता है तो कभी खद्दर की झूल लाद कर ही खुश हो जाता है। कभी-कभी पीले-काले या सफेद तार के फ्रेम में शीशे के दो गोल-गोल टुकड़े हिलगा कर आँखों के ऊपर रख लेता है। झूल के थैलों में एक ओर स्याही-भरी सटक लटकती रहती है; और दूसरी तरफ़ समय बताने वाली डिब्बी का दिल धड़का करता है।

एक दो नहीं, लीडर सैकड़ों-सहस्रों तरह के होते हैं। कोई राजनैतिक मैदान में उछल-कूद मचाता है, किसी ने अगाई-पिछाई तोड़ कर धार्मिक या साम्प्रदायिक क्षेत्र में द्वन्द्व मचाना शुरू कर दिया है। कोई समाज-संशोधन की सड़क पर कुलाचें भरने में मस्त है और कोई बिरादरी की बोसीदा बिल्डिंग पर बैठ कर 'ह्याऊँ-ह्याऊँ करता रहता है। इनके भी हज़ारों भेद-उपभेद हैं। सबका वर्णन करने के लिये बड़ी पोथी चाहिये। अगर मौक़ा मिला और मजलिस जमी तो चैत्र कृष्णा प्रतिपदा की सभा में इस विषय पर विस्तृत व्याख्यान दिया जायगा। सब लोग उस दिन हवाई क़िले के लम्बे-चौड़े मैदान में, रात्रि के ठीक पौने तीन बजे पधारें।

घसीटानन्द की घें-घें !

सुनोजी, सम्पादकजी ! बात सुनो; हम ऐसे-वैसे, ऐरे-ग़ैरे, अधकचरे, कुलेखक तो हैं ही नहीं, जो सोच-विचार कर या तबियत का "पैण्डुलम" थाम कर कुछ लिखने बैठें। हम तो ठहरे सुलेखक और सुकवि-नहीं—नहीं-कवीन्द्र और सुलेखकेश्वर ! जिस समय लिखने लगते हैं, उस समय कलम कुरङ्गी की-सी कुलाचें भरता हुआ काग़ज़-कानन में खूब ही किलोल करता है। काले मुँह की लेखनी से जो निकल गया, धनी के भाग ! हमारी तहरीर क्या है खुदा का फ़रमान होता है। मगर क्या बतावें, आजकल तो कुछ हमारा उत्साह फ़िक्र के शिकंजे में ऐसा कस गया है कि कुछ लिखने को जी ही नहीं चाहता। जब तबियत में जोश ही नहीं तो फिर क्या—

"गौहरे मज़मूं निकलते हैं, मगर बेआबदार—
जब कि दरियाये तबीअ़त जोश पर होता नहीं।"

नहीं तो जनाब ! इस बन्दे नातवाँ ने अपनी अस्सी-नव्वे बरस की ज़रा-सी उम्र में जो मलिका हासिल किया है, वह किस क़म्बख़्त की क़िस्मत में बदा था ? एक-एक दिन में दो-दो तीन-तीन गद्य-पद्य मय विस्तृत पुस्तकें तैयार कर देना तो ईंजानिब के दस्ते मुबारक का मामूली करश्मा था। बन्दे की लेखनी की द्रुत गति देख कर देखने वाले 'पंजाब मेल' की हंसी उड़ाकर फकफक करने वाली मोटरकार पर फक्किका फेंका करते थे। हम नहीं समझते कि लोग अब छन्दःशास्त्र और अलङ्कार-ग्रन्थों को पढ़कर क्यों अपने समय को नष्ट-भ्रष्ट किया करते हैं ? हमें तो

अपनी ज़िन्दगी में, बखुदा, इन ऊल-जलूल बातों की ज़रूरत ही नहीं पड़ी ! हमने तो आज तक इन किताबों के दर्शन भी नहीं किये ! मगर—शायरी ! ओहो ! ग़ज़ब की होती है ! शायरी की शोहरत तो यहाँ तक बढ़ गई है कि साधारण कोटि के आदमी तो क्या, बड़े-बड़े साहित्य-शत्रु तक उसकी मुक्तकंठ से प्रशंसा करते और दाद देते हैं। नीचे लिखी दो पंक्तियों पर तो बस 'वाह-वाह' के पुल ही बँध गये ! दिल थाम और ज़रा होश सँभाल कर सुनिये—

हेच ऐंगज़ाइटीज़ न कर्त्तव्यम्
कर्त्तव्यम् ज़िकरे खुदा,
खुदा ताला प्रसादेन—
सर्वं कार्यम् फ़तह शवद ।

मगर अब हमें बड़ा अफ़सोस होता है कि स्वतन्त्र विचार के हम जैसे 'निरंकुश कवि' भी कविता-कामिनी के कोमल कलेवर को कठोरता की कसौटी पर कसना चाहते हैं। चाहिये तो यह कि शायरी की घोड़ी की लगाम उतार कर उसे बड़ी आज़ादी से बिना अगाई-पिछाई के हिनहिनाने और घूमने-फिरने दिया जाय। ख़ैर, हाँ एडीटर साहब, यह तो बतलाइये कि ये 'साहत्त समेलीन' क्या बला है ? हमें तो ऐसी नयी-नयी बातें पसन्द आती नहीं। भला देखिये तो, उस साल हमने अपने नवनवोन्मेषशाली मस्तिष्क का सेरों ख़ून ख़र्च कर पूरे सवा दो सेर का पुलन्दा "साहत्त के सभापित" को 'समेलीन' में पढ़ने के लिये भेजा था, मगर उसका वहाँ किसी ने नाम तक नहीं लिया। हमारी नाबीना शायरी के पुरजोश मज़ामीन पर यह 'सेन्सर' का काम कैसा ? भला कोई बात है कि छन्दों के नियम, अलङ्कारों का उपयोग, रसों का संचार, भावों की भरमार आदि बातें न हों तो हमारी

"शुहर-ए-आफ़ाक़" शायरी को लोग शायरी ही न कहें ! बाप रे बाप ! यह नयी-नयी बातें कहाँ से आ गईं ? कैसा ज़माना हो गया ? अघटित घटना घटने लगी ! लोग हम जैसे शायरों की दिल-शिकनी करने में ज़रा भी नहीं हिचकते। जो हो, नई रोशनी के दिलचले लोग चाहे जो करें पर, अपने राम तो 'राई घटें न तिल बढ़ें' वही पुरानी लकीर पीटते हुए, 'घें-घें' करे ही जायँगे।

'प्रैक्टीकल परमार्थ'

अरे साहब, अर्थशास्त्र-अवधूत की अर्थी उठाकर, तिजारत-तवाइफ़ का तबला बजाना शुरू किया तो उसका भी फड़ाका उड़ गया! चाकरी-चन्द्रिका का चाहक चकोर बना तो वहाँ भी क़िस्मत की कृपा से "कोरमकोर चौबाल सौ!" मूज़ी मालिक ने साफ़ सुना दिया और खुले ख़ज़ाने कह दिया—

चाकर है तो नाचा कर,
ना नाचे तो ना चाकर।

सो, दोस्त, चाकरी-चक्र में चकफेरी भरते-भरते जोश का जनाज़ा निकल गया! तन्दुरुस्ती के औंधे नगाड़े हो गये और साथ ही तोंद की भी कुकुडुम्कूँ बोल गई! इधर नौकरी की मार उधर फ़िकिर की फटकार! दोनों मिलकर एक और एक ग्यारह हो गये! दस खाऊ, एक कमाऊ! बाप रे बाप! जीवन हुआ या मरना! आबादी कहूँ या बरबादी! परिवार है या अत्याचार! आह! चिन्ता चुड़ैल ने तो चुप-चुप चुसकी ले-लेकर मेरे सुन्दर शरीर का सारा सार ही निचोड़ लिया! अब असार संसार में मेरा जीवन भी निःसार बन गया! कहाँ जाऊँ! क्या करूँ? इधर जाऊँ या उधर मरूँ! नाक में दम है और कान में आँखें। बड़ी परेशानी! सख्त मुसीबत! भाग्य भड़वे को बहुतेरा तलाश किया, ज़ोरों से पुकारा, चीख़-चीख़ कर आवाज़ दी, मगर वह हरामी किस की सुनता है। अन्त को अपने राम से न रहा गया और चाकरी-चुड़ैल को चूल्हे में झोंक कर बन गये पूरे 'निखिल तन्त्र स्वतन्त्र।' प्रारब्ध की पिस्तौल में कुयश के कारतूस डाल

कर लगे दानियों के द्वार पर दनादन दाग़ने ! पौराणिक लोग जिस गुणपुञ्ज गोमाता की पूँछ पकड़कर वैतरणी तरते हैं, उसके 'नाम मात्र' ने मुझे परिवार-पारावार से पार कर दिया ! फ़र्श सें अर्श पर जा बैठाया ! जिस हिन्दू-हृदय के आगे गोरक्षा के नाम पर, गोलक खनखनाई उसी ने अण्टी टटोल या बटुआ खोल कर, गोल-गोल ताम्रटूक इस 'परमार्थ'-पेटी में पटक दिये ! किसी ने इकन्नी की कन्नी दबाई और कोई दुअन्नी को 'दरियाए-ए-शोर' करने लगा। कितने ही भइये तो चाँदी के चिलकइये हमारे हवाले कर मूछें मरोड़ने लगे। जिस समय अपने राम रेल के डिब्बे में कड़कती हुई आवाज़ या फड़कती हुई वाणी से गोरक्षा के गीत गाते थे, उस समय श्रोता सन्न और वक्ता प्रसन्न हो जाते थे। "अहा ! अच्छी अपील की ! ख़ूब चिड़ियाँ फाँसी !! बड़ी सफलता हुई ! इन भोंदू भक्तों से काफ़ी टके हाथ लगेंगे और घर चल कर विविध व्यंजन छकेंगे।" चमचमाती चपरास, लपलपाती रसीद बही, और खनखनाती हुई गोलक ने तो लोगों पर रौब डाट दिया। अगर कहीं हमने अपने गिरा-ग्रामोफ़ोन पर गो-रोदन-रूप रैकर्ड चढ़ा दिया तब तो बाज़ी ही मार ली ! सोने में सुगन्ध आ गयी !! गिलोय नीम पर चढ़ गयी !!! हमारी गगनगामिनी गर्जना ने थर्ड तो थर्ड सैकिण्ड और फर्स्टक्लास तक के मुसाफ़िरों के कानों पर तड़ाक से तमाचा जड़ दिया ! वे भड़भड़ाते हुए उठे, और पूछने लगे—क्या 'एकचुअली' 'कुलीजन', हो गया ! यह था बन्दे की वाणी का प्रभाव और आमदनी का भाव।'

अच्छा-फिर ? फिर क्या, लगी ईंट पर ईंट सवार होने और खटाखट खन्नी खटकने ! ग्राम भी खरीदे और धाम भी बनाये। विवाह भी किये और ख़ुशियाँ भी मनाईं। हिसाब ? हिसाब ?

आखिर किसी के दादा का कुछ देना था जो हमसे कोई हिसाब-फ़हमी का मतालिबा करता ! अरे, पबलिक का पैसा पबलिक के पास ! किस का लेना और किस का देना ? कहाँ का जमाखर्च और कैसा वार्षिक विवरण ? हमने जो प्रचण्ड पुरुषार्थ किया था अब उसी का अनुसरण हमारा शिष्य-समुदाय भी कर रहा है। चेले माँग-माँग कर लाते हैं और अपने राम बैठे मौज उड़ाते हैं। 'आल इण्डिया गोशाला' के दालान में दूध के दरिया बहते और घी के घान पड़ते हैं। बैलों की बहादुरी ने अलग खेतों को ख़ुश क़िस्मती अता कर रक्खी है। "अखिल भारतीय संस्कृत विद्यालय" भी अपना अच्छा काम कर रहा है। विद्यार्थी-वृन्द और अध्यापक महाशय को मेरी चाकरी और चापलूसी से फ़ुरसत मिल जाती है तो वे भी सप्ताह में एक घण्टे किसी दरख़्त के नीचे बैठ कर "टाभ्यामृभिस्" कर लेते हैं। लोग मुझे ब्रह्मचर्य का 'बायलर' या सदाचार का 'सन्दूक़' समझते हैं। परन्तु जिस समय मैं पोते को बग़ल में दबा कर, मचान पर बैठा-बैठा हुक्का गुड़गुड़ाता और दाढ़ी पर हाथ फटकारता हूँ, उस समय बार-बार भूलने पर भी यह लोकोक्ति याद आये बिना नहीं रहती—

"दुनिया ठगिये मक्कर से,
रोटी खइये शक्कर से।"

चूहों का डेपूटेशन

रुद्र भगवान् की सेवा में—

परमगौरवास्पद, महामाननीय, सकल सुख-संहारक, अनेक दुःख-प्रचारक श्री रुद्र भगवान् की श्रीसेवा में, सादर प्रणाम !

महामहिम, हम लोगों पर घोर अत्याचार हो रहा है। हमारा सारा जीवन दुःखमय है। हम लोगों को जिस सङ्कट का सामना करना पड़ता है, उसका वर्णन करना अत्यन्त कठिन है। मारे कष्टों के हमारा नाक में दम है, रात-दिन चैन नहीं पड़ता। किसी कमज़ोर के कन्धों पर भारी भार लाद देना बड़ा अन्याय है।

हे रुद्र भगवान्, आप ही बताइये, कहाँ तो 'चिऊँ-चिऊँ' कर पेट भरने वाले हम क्षुद्र जीव और कहाँ हाथी की सूँड़ धारण करने वाले "हिज़ हैवीनैस" श्रीलम्बोदर महाराज ! भला हमारा और उनका क्या सम्बन्ध ? परन्तु आप लोग कुछ विचार नहीं करते। 'आव देखते हैं न ताव' बिना विचारे चाहे जो कुछ कर डालते हैं। रुद्रदेव, सच बताइये, हम लोग "मुण्डविशाल शुण्ड-सटकारी, भाल त्रिपुण्ड कलाधर-धारी" श्रीगणेशजी के भारी भार को कैसे सहार सकते हैं ? महाराज, रक्षा कीजिये ! नहीं तो हम लोगों का अस्तित्व ही न रहेगा। हे देव ! हमारे दुःखों की पराकाष्ठा यहीं नहीं हो जाती, और देखिये—"मरे को मारे शाह मदार।"—आजकल मृत्युलोक में हम पर बेडौल तबाही आई हुई है। हमारा वंश धड़ाधड़ नष्ट हो रहा है, हम लोग लाखों की संख्या में काल के कवल बन रहे हैं। हज़रत इंसान को हम पर दया करनी चाहिये, परन्तु ऐसा नहीं हो रहा ! डाक्टर कहलाने

वाले विचित्र वेषधारी अजीब जन्तु हमें महामारी फैलाने वाला बताते हैं, जिसके कारण लोगों ने ऐसे-ऐसे उपाय सोचे हैं कि हम बिना आई मरे जाते हैं। कहीं हमारे घर खोद कर उनमें आग लगाई जा रही है, कहीं हमारे ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेला जा रहा है। कहीं 'फ़नाइल' के छिड़काव से हमारी नाक सड़ाई जा रही है और कोई "एण्टीरैट" का आविष्कार कर हम से वैर निकाल रहा है।

हे भगवान्, क्या करें? कहाँ जायँ? किस प्रकार त्राण मिले, कुछ समझ में नहीं आता। हमें मार कर लोगों को सिंह पछाड़ने की-सी प्रसन्नता होती है। हम लोगों ने संसार के साथ जो उपकार किया है, उसे कोई नहीं जानता, सब भूल गये! यदि हम लोग शिवलिंग के चावल चबा कर मूलशङ्कर को न चेताते तो दयानन्द बन कर देश का उद्धार कौन करता।

हे रुद्रनारायण! दया कीजिये, करुणा कीजिये, हमारे दुःखों को दूर कर अक्षय पुण्य कमाइये। हम लोग अमूल्य वस्त्रों और मोटे रस्सों को तो काट सकते हैं, परन्तु अपना संकट-जाल काटने में असमर्थ हैं, अक्षम है। यह कैसे दुःख की बात है।

हे दयालु! जो कुछ हम लोग आपकी सेवा में निवेदन कर सकते थे, किया। अब आप माई-बाप हैं, जो चाहें सो करें। सम्भव हो तो हमें बचाइये, हमारी ताई घूँसदेवी अब दिखाई नहीं देती, देखना, रुद्रदेव! कहीं ऐसा न हो कि लोगों के अत्याचारपूर्ण व्यवहार से हम भी 'निराकार' हो जावें। आपकी खिदमत में वाजिब जान कर अर्ज़ किया, अब न्याय करना न करना आपके हाथ में है।

हम हैं, आपके निहायत ग़रीब मज़लूम—
चूहे लोग

'मतवाला'-'माधुरी' का विवाह !

[लखनऊ की 'माधुरी' और कलकत्ता से प्रकाशित हास्य-रस-प्रधान 'मतवाला' में खूब नोंक-झोंक रहती थी। जिस समय यह लेख लिखा गया दोनों की बड़ी धूम थी। जिन पत्र-पत्रिकाओं का इस लेख में उल्लेख है वे सब भी उस समय प्रकाशित होते थे। इनमें से कितने ही पत्र बन्द हो चुके हैं। —लेखक]

लीजिये, महाशय, जिस 'माधुरी-मतवाला' विवाह की सप्ताहों से चर्चा चल रही थी, वह हो गया और बड़े समारोह से हो गया। धूम-धाम का धड़ाका और समारोह का सड़ाका देख कर अपूर्व आनन्द प्राप्त होता था। आज हम पाठकों को उसका सविस्तर संवाद सुनाते हैं, कान फटफटा कर और गर्दन झुका कर सुनिये—

'माधुरी' का महल लखनऊ और 'मतवाला' का मन्दिर कलकत्ता में है। फ़ासला बहुत था। बरातियों ने शिकायत की कि विवाह के लिये कोई मध्यवर्ती स्थान होना चाहिये। इस प्रश्न पर वर-वधू के मध्य बड़ा विवाद रहा। अन्त में दोनों की राय से काशी या बनारस में रस बरसाना ठीक ठहरा। कुछ 'मतवाला' टस से मस हुआ, कुछ 'माधुरी' ने क़दम बढ़ाये। बस, ठीक समझौता हो गया। बनारस सबको पसन्द आई और वहीं विवाह-सम्बन्ध की ठहरी ! ऐन १९८० की धुलहंडी के दिन बरात चढ़नी शुरू हुई। आगे-आगे संख घड़ियाल बजते जाते थे, कुछ लोगों के हाथ में सूप छलनी थे, कितने ही लोग 'केरोसिन आयल' के कनबुच्चे कनस्तर पीट रहे थे। 'मतवालाराम' मारे मस्ती के टाँग उठाये तथा त्रिशूल हाथ में लिये स्वयं ही कुदकते-फुदकते जा

रहे थे। कभी-कभी आप "अमिय गरल शशि शीकर रविकर राग-विराग भरा प्याला" वाला गीत गाकर लोगों को प्रसन्न करते थे। बाराती लोग अपनी-अपनी पेपर-कारों (Paper-Cars) में सवार थे। 'भारतमित्र', 'बँगवासी', 'कलकत्ता-समाचार', 'विश्वमित्र', 'देश', 'वैद्य', 'वेंकटेश्वर', 'विहार-बन्धु', 'अभ्युदय', 'प्रताप', 'प्रणवीर', 'कर्मवीर', 'विज्ञान', 'विद्यार्थी', 'आर्यमित्र', 'आर्य-मार्त्तण्ड', 'सद्धर्मप्रचारक', 'कर्त्तव्य', 'प्रेम', 'चित्रमय जगत्', 'भविष्य', 'वर्त्तमान', 'अर्जुन' आदि सभी गण्यमान्य सज्जन बारात में मौजूद थे। बनारस का 'आज' स्वागत में संलग्न था, 'सूर्य' प्रकाश करता फिरता था, 'हिन्दी-केसरी' गरजता चलता था, 'भारत-जीवन' भोजन-भण्डार का अध्यक्ष बना बैठा था, 'निगमागम-चन्द्रिका' 'माधुरी' की आवभगत में लग रही थी। बड़ी धूम-धाम के बाद बारात 'ज्ञान-मंडल' पहुँची। बारातियों के भोजन के लिये लाल, पीली, काली, हरी सब तरह की स्याहियाँ—नहीं-नहीं-मिठाइयाँ—मौजूद थीं। रहने के लिये २०×३०, १७×२७, १८×२२, २०×२६ इत्यादि अनेक प्रकार के काग़ज़ी महल बनाये गये थे, पर किसी को कोई पसन्द न आया। लोग एक कमरे में बैठ कर परिणय-प्रसंग पर बात-चीत करने लगे। उधर 'माधुरी-मण्डल' का भी खूब ठाट-बाट था, बड़ी सजावट की गई थी, शोभा देखने लायक़ थी। इसके साथ 'प्रभा', 'गृहलक्ष्मी', 'सरस्वती', 'मोहिनी', 'ज्योति', 'आकाश-वाणी', 'श्रीशारदा', 'शिक्षा', 'सम्मेलन-पत्रिका' आदि बीसियों सहेलियाँ अपनी अनुपम छटा से दर्शकों का मन मुग्ध कर रही थीं। बड़ी चहल-पहल थी। यहाँ का सारा प्रबन्ध 'चाँद', 'महिला-समाचार', 'स्त्री-धर्म-शिक्षक' आदि 'मर्दाने-ज़नानों' के सुपुर्द था। अभिप्राय यह कि वर-वधू दोनों पक्षों में सब प्रकार की सुव्य-

वस्था थी । मनोहर गीत गाये जा रहे थे, 'माधुरी' भी 'रामेश्वर' की कृपा से रँग बदल-बदल कर अपने सौन्दर्य की छटा दिखा रही थी ।

२

हाँ, 'ज्ञान-मंडल' की बात तो रह ही गई, वहाँ 'वेंकटेश्वर' और 'बंगवासी' ने एक नयी लीला रच डाली । ये दोनों कहने लगे कि ज्योतिष के विचार से बनारस में विवाह करना ठीक न होगा । जब-जब यहाँ सहयोगियों के सम्बन्ध हुए तब ही तब दुःखद परिणाम निकले हैं । 'भारत-जीवन' की दुर्दशा देखिये, 'तरंगिणी' के बिना कैसा तड़पता रहता है । 'स्वार्थ' और 'मर्यादा' का तो ऐसा अशुभ विवाह हुआ कि आज दम्पती में से एक भी जीवित न रहा ! 'निगमागम-चन्द्रिका' इसी डर से अभी तक अविवाहिता बनी हुई है, नहीं तो क्या वह 'ब्राह्मण-सर्वस्व' का पाणि-ग्रहण न कर सकती थी ? 'कर्त्तव्य' ने इस बात का समर्थन किया और कहा—"वस्तुतः कुछ ऐसी ही बात है, कानपुर में 'प्रताप' तथा 'प्रभा' के विवाह और प्रयाग में 'अभ्युदय' तथा 'सरस्वती' के सम्बन्ध से क्रमशः 'विक्रम' और 'बालसखा' उत्पन्न हुए पर बनारसी विवाहों का उल्टा ही परिणाम निकला है !" बहुत-से सहयोगियों ने इस भ्रम का समर्थन किया पर 'आर्यमित्र', 'अर्जुन', 'आर्यमार्त्तण्ड' आदि को यह बात बहुत नापसन्द आई । उन्होंने अपनी दलीलों से इस 'ढिलमिल यक़ीनी' का खंडन किया । बात माक़ूल थी, सबको माननी पड़ी और बनारस में ही विवाह होने की बात पक्की रही ।

इस मौक़े पर 'आर्यमित्र' ने एक बड़े मार्के की बात कही, वह बोला—"माधुरी-वधू से मतवाला-वर तोल-मोल तथा आयु

में बहुत कम है, अतएव इस बेजोड़ विवाह से आर्यसमाजी विचार-धारा के लोग सहमत नहीं हो सकते।" सुधारक-दल 'निस्संदेह', 'निस्संदेह' कह कर 'आर्यमित्र' की हाँ में हाँ मिलाने लगा। एक बाराती तो बिगड़ कर यहाँ तक कहने लगा—"माधुरी और मतवाला के गुण, कर्म, स्वभाव नहीं मिलते! ठिकाना है—कहाँ एक सर्वाङ्ग सम्पन्ना सुन्दरी और कहाँ उछलता-कूदता मुँहफट मतवाला! कहाँ वह भारी-भरकम रमणी और कहाँ यह निमुच्छा बावला! कहाँ उसकी सुहावनी वेश-भूषा और कहाँ इसकी दिगम्बर देह पर लिपटी हुई लँगोटी! कहाँ उसका सँभला-सुघरा केश-कलाप और कहाँ इसकी बड़े-बड़े बालों वाली खोपड़ी! कहाँ 'माधुरी' के कल-कण्ठ की मनोहर माला और कहाँ 'मतवाला' की गर्दन से लिपटा नाग काला! कहाँ उसके कर-कमल का कलित कङ्कण और कहाँ इसकी टेढ़ी टाँगों का खुरदरा खड़ुआ! कहाँ माधुर्य-पान करने वाली माधुरी और कहाँ बोतल उड़ेलने वाला बौड़म! कहाँ खुले हुए सुन्दर-सुघड़ नेत्र और कहाँ मिची हुई औंधी-अनघड़ आँखें! कहाँ उस सुसभ्या का घूँघट उठाकर झाँकना और कहाँ इस असभ्य का टाँग उठा कर उछलना! कहाँ उसकी मन्द मुस्कराहट और कहाँ इसकी बेढब बड़बड़ाहट! कहाँ दो वर्ष की दुलहिन और कहाँ सतमासा शौहर! कहाँ 'माधुरी' की मोहिनी मूरत और कहाँ 'मतवाला' की भौंड़ी सूरत! 'अन्तरम् महदन्तरम्!—'कहो तो कहाँ चरण कहाँ माथा।'

इसके बाद कई अन्य सुधारकों ने भी लम्बे-चौड़े व्याख्यान झाड़े परन्तु जब सब बातें तय हो चुकी थीं तब कोई कर ही क्या सकता था?

"मैं तू राजी, तो क्या करेगा 'काजी'"

जब 'मतवाला' 'माधुरी' पर और 'माधुरी' 'मतवाला' पर मुग्ध है तो सुधारकों के ढोल की ढमाढम सुनता कौन है। सुधार विषयक सब प्रस्ताव व्यर्थ गये ? अभी विवाह-संस्कार में देर थी, अतः बाराती लोग मण्डली बनाकर आपस में विनोद करने लगे।

'कर्मवीर'—"भाई, 'भारतमित्र' और बंगवासी' बड़े संयमी हैं, वृद्ध हो गये पर इन्होंने आज तक वर्णबाह्य विवाह नहीं किये। यदि वे चाहते तो बंगाल की 'वसुमती', विनोदिनी', 'स्वर्णकुमारी' या ऐसी ही किसी वधू से शादी कर सकते थे, पर, उन्होंने ऐसा नहीं किया।"

'प्रणवीर'—"क्या 'वेंकटेश्वर-समाचार' किसी गुजरातिन से गँठजोड़ा कर वर्णबाह्य विवाह की "वाहवाही" नहीं लूट सकता था ?"

'अभ्युदय'—"माधुरी' का विवाह 'आर्यमित्र' से होता तो अच्छा रहता क्योंकि इसको अपना २५ वर्ष का ब्रह्मचर्य-काल समाप्त किये एक साल हो गया।"

'प्रेम'—परन्तु 'आर्यमित्र' को यह बात पसन्द कब आती ? वह तो ठहरा बात-बात में गुण, कर्म, स्वभाव तलाश करने वाला अक्खड़ आर्य !"

'अर्जुन'—"नहीं-नहीं, इन दोनों में परस्पर बड़ा विचार-वैभिन्य है, वह बेजोड़ विवाह हरगिज़ न करेगा। २५, २६ वर्ष के वर को नियमानुसार षोडशी वधू चाहिये।"

'विश्वमित्र'—"माधुरी के साथ 'प्रताप' या 'अभ्युदय' का सम्बन्ध....................."

'कलकत्ता-समाचार'—"अरे यार, क्या अक़्ल चरने चली गयी

है, 'प्रभा' और 'सरस्वती' किसकी जान को रोएंगी।"

'वर्त्तमान'—"हमारे समाज में सहयोगियों की अपेक्षा सहयोगिनियाँ कम हैं, इसी से ये क़याफ़े लड़ाने पड़ते हैं, वरना—"

'मतवाला'—"तुम लोग भी ग़ज़ब कर रहे हो, जिस भलेमानस के विवाह में आये हो, पहले उसे तो "चौपाया' बनने दो, बाक़ी सब बौंत फिर बौंत लेना।"

इतनी बातें करते-करते विवाह-वेला आ पहुँची, सब लोग मण्डप में गये। विवाह का कार्य प्रारम्भ हुआ, ब्राह्मण-सर्वस्व' मन्त्र पढ़ने लगा और 'ब्रह्मचारी' ने क्रिया करानी शुरू की। 'मतवाला' नाचता जाता था और 'माधुरी' संकोच से धरती में धँसी जाती थी। बाराती लोग क़हक़हा लगा कर हँस रहे थे। 'मतवाला' का छोटा भाई 'रसगुल्ला' वर-वधू की ओर इशारा करके कहता था—

"इन सम पुरुष न उन सम नारी,
जनु विरंचि सब बात सँवारी।"

अहा! फेरे फिरने में बड़ा आनन्द आया, 'मतवाला' की सात डगें माधुरी की एक पदी के बराबर होती थीं। 'माधुरी' चलते में झुकती जाती थी और 'मतवाला उचक-उचक कर ऊंचा उठने की कोशिश करता था। खैर, ज्यों-त्यों वैवाहिक कृत्य समाप्त हुआ, 'आकाशवाणी' ने फूल बरसाये, 'ज्योति' ने आर्ती गाई, 'प्रभा' निछावर करने लगी और 'सरस्वती' ने स्वागत किया! दूसरी ओर से वृद्धों ने दम्पती को आशीर्वाद देना शुरू किया।

'भारतमित्र'—

"अचल होहि अहिवात तुम्हारा,
जब तक घिसे न टाइप सारा।"

'बंगवासी'—

"जीवित रहैं वधू-वर प्यारे,
कागज़ फटें न जब तक सारे।"

'वेंकटेश्वर'—

"जीवित रहै ईश यह जोड़ा,
जब तक वर के कर में कोड़ा।"

'प्रेम'—

"रहै प्रीति निशिवासर पक्की,
जब तक चले भूत की चक्की।"

'अभ्युदय'—

"सारस जोड़ी तबलों जीवे,
जब लों 'मतवाला' मद पीवे।"

आशीर्वाद के बाद बारात तो विदा हो गई, पर वर-वधू के बीच विवाद उठ खड़ा हुआ है। माधुरी कहती है—"तुम्हें लखनऊ के अमीनाबाद पार्क में रहना पड़ेगा।" मतवाला कहता है—"तुम्हें कलकत्ता के शंकर घोष लेन में घर बसाना होगा।" दोनों अपने-अपने हठ पर डटे हुए हैं। विशेषज्ञों का कहना है कि अगर इस विषय में समझौता न हुआ तो बनारस में बना रस विष बन जायगा, और फेरों को फेर कर भाँवरों के बखिये उधेड़ने पड़ेंगे।

हुक्के की हिस्ट्री

उफ़ ! सुधारकों ने मेरा .नाक में दम कर दिया ! जिस सभा में जाइये मेरा विरोध ! जिस सोसाइटी को देखिये मेरी दुश्मनी ! जिस संस्था की निरीक्षण कीजिये मेरी बग़ावत ! अरे साहब ! मैं क्या हुआ लोगों की आँखों का काँटा हो गया ! कोरा वाचनिक विरोध होता सो भी नहीं, लोगों ने मुझे काया-कष्ट देकर अंग-भंग तक कर डाला ! किसी ने मुकुट फोड़ा, किसी ने गरदन पर ईंटें बजाईं, कोई दिल पर दुहत्थड़ मार कर वीरता दिखाने लगा और किसी ने फैंफड़े पर पत्थर पटक दिया ! निदान—जिससे जिस तरह बना मेरा वंश-विनाश करने लगा। परन्तु मुझे देखिये, मैं नाना प्रकार के सङ्कट झेलता, मुसीबत ठेलता लोगों के मुँह लगा ही रहा ! भाई क्या कहते हो, मैं तो मैं कभी घूरे की भी फिरती है। देखते नहीं, जो लोग एक दिन मुझे मारने को दौड़ते थे आज वे ही शुद्धि के मैदान में बैठकर मेरी परिस्तिश कर रहे हैं।

मेरी कारगुज़ारी ही ऐसी है। औरङ्गज़ेब की तेज़ तलवार को जिस काम के करने में देर लगती थी उसे मैं एक 'गुड़गुड़ाहट' में करा देता हूँ। शुद्धि-सभा को जितना मुझ पर भरोसा है उतना बेचारे वेद-शास्त्रों पर भी नहीं। मैंने अब तक लाखों बिछुड़ों को उनके भाइयों से मिला दिया। पहले मेरी शक्ल से नफ़रत की जाती थी, पर, अब दस-दस हज़ार की सभा के बीच, बड़े-बड़े राजे-महाराजे, साधु-संन्यासियों और पण्डित-पुरोहितों की मौजूदगी में मेरी तूती बोलती है ! मेरी मधुर ध्वनि सुनते ही जनता 'जय-जयकार' करने लगती है। लोग मेरी मृदुल मूर्ति की ओर टकटकी लगाये देखते रहते हैं। अगर मैं

नहीं तो कुछ भी नहीं और मैं हूँ तो सब कुछ ! कोई नहीं पूछता कि वेद क्या कहते हैं ? शास्त्र क्या अलापते हैं ? स्मृति की क्या सम्मति है ? पण्डित क्या बखानते हैं ? सब की एक ही बात— "हुक़्क़ा-पानी हुआ कि नहीं ?" "हाँ, हो गया !"—"अच्छा तो अब रोटी-बेटी होने दो, सगाई चढ़ने दो बारात बढ़ने दो और पण्डित को विवाह पढ़ने दो।"

देखी मेरी शक्ति और परखा मेरा पराक्रम ! है मुझ में कुछ करामात ? आधुनिक भारत ने बस दो नवीन आविष्कार किये हैं, एक मेरा और दूसरा मेरे सौतेला भाई चरखे का ! समाज और देश का अगर सुधार होगा तो हम दोनों के ही द्वारा। देखने में साधारण पर, काम करने में हम लोग असाधारण हैं। अगर सन्देह हो तो भारतीय शुद्धि-सभा के महा मन्त्रीजी या कांग्रेस कमेटी के प्रेसीडेण्ट साहब से हम दोनों की कारगुज़ारी की रिपोर्ट तलब कर ली जावे।

---

१४४ !

अरे क्या पूछते हो—मेरा नाम '१४४' है। मैंने बड़ों-बड़ों का मान-मर्दन कर दिया! पुष्प-शय्या पर शयन करने वालों को कारागार की कंकरीली धरती पर सुला दिया! सिंह की तरह गर्जने वाले वक्ताओं के मुँह पर ऐसा मुछीका लगाया कि उनकी बोलती बन्द करदी! जो काम बड़ी-बड़ी शक्तियों से महीनों में नहीं हुआ उसे मैंने मिनटों में कर दिखाया! जिस सभा-मण्डप में, मैं पहुँच गई उसमें बस मैं ही मैं मटकने लगी। बड़े-बड़े मुझ से मग़ज़ मार कर मर गये, पर, किसी से मेरा बाल भी बाँका न हुआ। मैं मोम की तरह इतनी मुलायम हूँ कि मजिस्ट्रेट-मदारी चाहे जिस ओर मुझे घुमा-फिरा सकता है। साथ ही वज्र की तरह इतनी कठोर हूँ कि जहाँ पंजे अड़ा देती हूँ फिर सम्पटपाट किए बिना टलती नहीं।

कहो, ख़बर है असहयोग आन्दोलन की! पता है 'नान-कोआपरेशन मूवमेंट' का! कैसे करिश्मे दिखाये! क्या गुल खिलाये। कितना कौतुक किया! रोज़ यही सुन पड़ती थी—"आज फ़लाँ 'लाल' लद गये, कल अमुक 'दास' गये, परसों इनके 'देव' बेड़ियाँ खटका रहे हैं, अतरसों ढिमके दत्त हथकड़ी पहने जा रहे हैं।" भाई, सच समझना, मेरी बदौलत लोगों में हिम्मत आ गई। जो लोग क़ैद के नाम से कानों पर हाथ रखते थे, वे भी मेरी ललकार पर एक बार 'जेल की चिड़िया' बनने को तैयार हो गये, और तो और अबला कहलाने वाली स्त्रियाँ भी सबला बन बैठीं! ह ह ह ह ह! इन बातों से मैं ख़ूब मशहूर हो गई हूँ! मेरा नाम शैतान की तरह 'शोहर-ए-आफ़ाक़' हो गया है! मेरी सर्वतोमुखी गति है।

मैं पहले ही मोम की तरह मुलायम और वज्र की तरह कठोर बन चुकी हूँ। राजनैतिक दंगल से जी ऊब उठा तो अब मेरे मदारी ने मुझे धार्मिक क्षेत्र की नाप करने को भेजा है। 'नगरकीर्तन' और 'रामलीला' पर मैंने अपना सिक्का जमाया है? इन धूम-धड़ाकों पर अपनी धाक बिठाई है! है किसी की हिम्मत जो मुझ से मुँह मोड़ कर मैदान में डटे? मिला कोई जिसने मेरा मान-मर्दन किया! 'ह ह ह ह' मैं क्या हूँ, शक्ति का कोष और बल का भण्डार हूँ!

अहा! मेरे नाम में तो बड़ी ही विचित्रता है। मैं तीन अंकों से बनी हूँ, जिनका योग नौ होता है। संसार का सारा गणित शास्त्र इन ९ अंकों में ही समाप्त हो जाता है। अर्थात् मैं इस 'अंकशास्त्र' की पड़दादी हूँ! या यों कहिये कि जनता से पूजा पाने के लिए 'नवग्रह' स्वरूप हूँ! मैं एक हूँ और चार-चार भी; अर्थात् संसार को उपदेश देती हूँ कि एक ईश्वर पर विश्वास रखते हुए 'काम', 'क्रोध', 'मद' 'लोभ' से बचो और 'धर्म', 'अर्थ', 'काम', 'मोक्ष' की प्राप्ति में प्रयत्नवान हो! 'पोलिटिकल पार्टी' व्यर्थ ही मुझ से भयभीत होती है—मेरा १ उसे एकता का बोध कराता है; ४ 'साम', 'दाम', 'दण्ड', 'भेद' बताता है, और दूसरा ४ चरखा, करघा, खद्दर एवम् अछूतोद्धार की ओर ले जाता है। समझे! मैं इतनी विशाल और ऐसी व्यापक हूँ! मैं लोगों से मैत्री करने आती हूँ, लोग मुझे देखकर बिदकते हैं—कोसते हैं! इसमें मेरा क्या दोष? मैं क्या जानूँ? मेरा मजिस्ट्रेट मदारी जानें जो मेरी डोरी इधर से उधर और उधर से इधर करता रहता है—

'वाकी माया मोहि नचावे,
मैं कठपुतली वह डोरी है—
दईमारे भारत , होरी है।'

कवि-सम्मेलन की 'धड़ाकधूँ'

रात के ठीक १२ बजे, विनोद-वाटिका के बाड़े में कवि-सम्मेलन का कार्य प्रारम्भ हुआ। भारतवर्ष के प्रायः सभी सुप्रसिद्ध हिन्दी कवि मौजूद थे। जो लोग किसी विशेष कारण से न आ सके थे उन्होंने अपनी कविताएँ भेजकर ही सम्मेलन से सहानुभूति प्रकट की थी। सम्मेलन के सभापति-निर्वाचन का प्रस्ताव होने पर मि० विनोदानन्दजी सबसे पहले बोल उठे—"मेरी राय में, मैं ही इस पद के लिए अधिक उपयुक्त हूँ, क्योंकि न तो मैंने पिंगल पढ़ा है, और न किसी छन्दःशास्त्र का अनुशीलन किया है। न अलंकार जानता हूँ और न रसों का ही आस्वादन कर पाया है। पर, मेरी शायरी, ओह! ग़ज़ब की होती है, सुनते ही लोगों के दिमाग़ चक्कर काटने लगते हैं। तबीअत उबल उठती है, दिल दहक जाता है। मैं समझता हूँ, मेरी ऐसी जौलानी देख कर ही किसी ने यह बात कही है—"Poets are born not made" अर्थात् शायर लोग पैदा होते हैं, बनाये नहीं जाते। उठती हुई तबीअत पर किताबों का गट्ठर लादना भारी भूल है। मैंने अपने ऊपर यह ज़ुल्म नहीं किया। उम्मेद है कि आप लोगों ने मेरा मफ़हूम समझ लिया होगा और आप मेरे लिए ही राय देंगे।" कवि-समाज विनोदानन्दजी की बातें सुनकर दंग रह गया और सर्व सम्मति से आप ही सम्मेलन के सभापति बनाए गये।

आपनें सभापति का आसन ग्रहण करते हुए काव्य-सम्बन्धी जो बातें कहीं वे इतनी स्थूल थीं कि पाठकों की सूक्ष्म समझ में नहीं घुस सकतीं, इसलिए उनका यहाँ उल्लेख न किया जायगा। खैर, सभापतिजी की आज्ञा से कवि-कूल-कंकड़ श्रीयुत चटपटा-

नन्दजी ने अपनी हृदय-फाड़क और लताड़-भाड़क आवाज़ में कविता-कपोतनी के पंख उखाड़ने शुरू किये—

"पापी पेट भरन के कारन दर-दर दुरे फिरा करते हो,
कुत्तों की-सी पूँछ हिलाकर नाक ज़मीन घिसा करते हो,
पा करके फिर वेतन थोड़ा हाथ से हाथ मला करते हो,
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सरविस खोज किया करते हो,

× × ×

सादा कपड़े पहिन-ओढ़ कर औफ़िस जाने में डरते हो,
गाढ़े की टोपी से नफ़रत सिर पर हैट धरे फिरते हो।

× × ×

सनद सार्टीफ़िकट हाथ में, सेवा करने को फिरते हो,
खाकसार खादिम बन करके अर्जी पेश किया करते हो।
सौ-सौ बार सलाम भुकाकर मुँह की ओर तका करते हो
कालिज डिगरी पाय हाय! जब सर......................"

अभी चटपटानन्दजी अपनी कविता को समाप्त भी न कर पाये थे कि भट श्री भंभटानन्दजी दहाड़ने लगे—"बैठो-बैठो, तुमने कविता के कण्ठ पर कुठार चला दिया! न अनुप्रास का पता और न छन्द की गति का ध्यान! 'सरविस' की सनक में सबको 'साधुवाद' कह दिया! बैठो-बैठो तुम्हारी शायरी से शुअ्रा का कलेजा काँपने लगा है।"

सभा में गोलमाल होता देख कर मिस्टर प्रेसीडेन्ट "आर्डर प्लीज़"—"आर्डर प्लीज़" का प्रलाप करते हुए बोले—'हज़रात'! अब आप लोग 'शुतर बेमुहाल' की तरह इधर-उधर न दौड़ें। मैं एक 'शमस्या' देता हूँ, सब साहबान इतमीनान के साथ उसकी पूर्ति करें और एक के बाद दूसरे साहब सुनाते चलें।

समस्या—

"नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।"

कम्बख्त कवि—

हो जावें हम भारतवासी सब के सब बरबाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कठोर कवि—

विधवा-गाय-अनाथों की हाँ, नेक न आए याद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कुतर्की कवि—

सत्य-अहिंसा की सब बातें समझें हम बकवाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

काला कवि—

ब्लैक वारनिश-सी बौडी पर कोट-हैट लें लाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कट्टर कवि—

भारत पड़े भाड़ में चाहे, घटे न पद-मर्याद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कोपरेटर कवि—

पड़े पतन की पोखरियों में करें न दाद-फ़िराद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कर्मवीर कवि—

मनमानी माया रच डालो, हैं अबतो आज़ाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

क्रिश्चियन कवि—

ब्लैकवृन्द को मिलै हमारे ईसा का सुप्रसाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

फक्कड़ कवि—

हलुआ खाकर खीर सपोटें तऊ न आवे स्वाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कृपण कवि—

खाते-पीते रहें मौज से लेकर स्वाद-सवाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कौरस्पोंडेण्ट कवि—

भेजूँ छाँट-छाँट छपने को नित्य अशुभ संवाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कुटाँट कवि—

जरा-जरा-से वाक़ग्रात पर बरपा करें फ़िसाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कारपोरेशन कवि—

काम न करना पड़े, शहर में बढ़े सड़ाँयद-खाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कौमर्स कवि—

खद्दर और स्वदेशीपन का चढ़े न अब उन्माद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कण्टक कवि—

गिरे-पड़े, पिछड़े लोगों का सुने न आरत नाद;
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

कुशासन कवि—

भारत के हित से क्या मतलब करते रहें प्रमाद,
नाथ ! ऐसा दो आशीर्वाद ।

हवाई कवि-सम्मेलन

[अब की बार लोगों के दिमाग़ में फिर कवि-सम्मेलन का ख़ब्त सवार हुआ। बहुत आन्दोलन हुआ, अन्त में सर्व सम्मति से निश्चित किया गया कि इस वर्ष सम्मेलन, ज़मीन और आसमान के बीचोबीच करना चाहिए। बस, इस काम के लिये एक जय्यद जहाज (हवाई) मँगाया गया, जिसमें बैठ कर कवि-समाज आकाश की ओर उड़ा। वहाँ से बिना तार के तार द्वारा जो समाचार उपलब्ध हुए हैं, वे नीचे दिये जाते हैं—सम्पादक।]

अहा! वायुयान में बड़ा आनन्द आ रहा है। यहाँ आकर कवि लोगों के मस्तिष्क में एक अद्भुत स्फूर्ति पैदा हो गई है। लोगों के दहकते दिमाग़ से शायरी के शौले बढ़ी तेज़ी से फूट रहे हैं। नाम कहाँ तक गिनाऊँ, सभी प्रसिद्ध-प्रसिद्ध कवि मौजूद हैं। आज रात को पौने दो बजे से कवि-सम्मेलन की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। समस्या थी—"आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना"। हिन्दी समस्या के स्थान पर उर्दू 'तरह' को सुन कर कवि-समाज बेतरह नाराज़ हुआ! घनघोर वाग्युद्ध होने लगा, खूब लनतरानियाँ हँकीं! घूँसे-मुक्कों तक की नौबत आ गई! लोग वायुयान से असहयोग तक करने को तैयार हो गये! पर, सम्मेलन के प्रधान श्रीयुत काव्य-कण्टकजी ने अपनी अपूर्व योग्यता द्वारा सब का समाधान कर दिया और उक्त उर्दू समस्या पर ही पूर्तियाँ पढ़ने की आज्ञा दी। प्रधान की 'रूलिंग' सबको माननी पड़ी और कवियों ने एक-एक करके पूर्तियाँ सुनानी शुरू कीं, कुछ पूर्तियाँ इस प्रकार थीं—

समस्या—

"आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।"

पूर्तियाँ—

संवाददाता कवि—

शहरों में घूम-फिर कर खबरों को खोज लाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

पाचक कवि—

पकवान खीर पूरी सखरी खरी पकाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

भक्त कवि—

चौकी पै पाठ करना और बार-बार न्हाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

पतित कवि—

वचनों को भंग करना लुटिया सदा डुबाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

लेखक कवि—

ले लेख दूसरों के निज नाम से छपाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

भुक्खड़ कवि—

बेकूत पेट भरना दस बार दस्त जाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

'डायर' कवि—

निर्दोष भाइयों पर गन-गोलियाँ चलाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

निकम्मा कवि—

करना न काम कुछ भी पर चैन की उड़ाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

स्वार्थी कवि—

लोगों से ठग के खाना गुर्राना - गुरगुराना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

कौंसिल कवि—

बनकर प्रजा का प्रतिनिधि कुछ भी न कर दिखाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

म्युनिसिपल कवि—

करके असावधानी सब शहर को सड़ाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

करुण कवि—

निज देश-दुर्दशा पर आँसू सदा बहाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

गायक कवि—

स्वरहीन गीत गाना; बेताल 'गत' बजाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

ज़मींदार कवि—

आसामियों को दुख दे 'कर-भेज' का बढ़ाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

वकील कवि—

अभियोग लड़-लड़ा-कर शुकराना खूब पाना,
आता है याद हमको गुज़रा हुआ ज़माना।

वैद्य कवि—

अल्पज्ञता के कारण रोगी का दम घुटाना,
आता है याद हमको गुजरा हुआ जमाना।

कवियों की समस्या-पूर्तियों पर एकदम 'वाह-वाह' और 'मरहबा-मरहबा' की आवाज़ें आने लगीं। कितने ही मन-चले तो मारे प्रसन्नता के पेट पीटने लगे। बड़ा कोलाहल हुआ। जहाज का कप्तान समझा कि कोई आफ़त आई! दंगा हो गया! चट उसने 'वायुयान' की गति ज़मीन की ओर की। थोड़ी देर में ही वह नीचे आ गया। प्रेसीडेण्ट ने कहा—"लो, अब आप लोग उतरें और अपनी-अपनी इच्छाएँ पूर्ण करें। आप लोगों ने कविता तो कुछ की नहीं, अपनी-अपनी ख्वाहिशों का इजहार ज़रूर किया। अच्छा, अब आप आज़ाद हैं, जिसका जी जिधर चाहे उधर वह जा सकता है। सम्मेलन खत्म किया जाता है।"

———

'चपरपंच' का चीत्कार

(१)

सुनो, भाइयो ! बात मेरी सुनो
कलेजा पकड़ कर सिरों को धुनो
ग़ज़ब हो रहा है निहारो ज़रा
धरम को न इस भाँति मारो ज़रा

(२)

न मर्याद का ध्यान तुमको रहा
न मानो चपरपंच का कुछ कहा
बड़े उग्र, उद्दण्ड तुम हो रहे
बड़प्पन बड़ों का वृथा खो रहे

(३)

अगर जाति का चाहते हो भला
दबोचो सदा संघटन का गला
न जीती रहे, एकता की सभा
बुझा दो, अरे ! प्रेम की सुप्रभा

(४)

अछूतादि का नाम भी तो न लो
गिरों में लपक लात दो और दो
अगर वे विधर्मी बनें तो बनें
हमारी सदा चैन ही में छनें

(५)

कभी भूल कर भी न आगे बढ़ो
गढ़े से निकल कर न गिरि पर चढ़ो
कड़ी 'कूप-मण्डूकता' धारिये
छुआछूत का जाल बिस्तारिये

(६)

कलाक़न्द पूड़ी उड़ाया करो
मगर, दाल-रोटी न खाया करो
यही शुद्धता का महा मर्म है
सुनो, पण्डितो, बस परम धर्म है

(७)

नहीं हानि यदि गात-गर्दन हिले
करो व्याह यदि बाल-बाला मिले
न छोड़ो, अरे ! थैलियाँ खोल दो
बधू को वरो स्वर्ण से तोल दो

(८)

दुखी बाल-विधवा बिगोती रहें
बिलखतीं रहें, प्राण खोती रहें
मगर व्याह उनका रचाना नहीं
सुकुल को कलङ्की बनाना नहीं

(९)

धुजापा चढ़ाओ मियाँ-मीर को
दुशाला उढ़ाओ पड़े पीर को

क़बर की करामात को मान दो
कुतर्की बकें तो न कुछ ध्यान दो

(१०)

घरों में लड़ो और बाहर पिटो
'क्षमा' को न छोड़ो मरो या मिटो
न बलवान बनना, अकड़ना कभी
न तलवार, बरछी पकड़ना कभी

(११)

लुटें देवियाँ पास जाना नहीं
झुकें भाड़ में, पर बचना नहीं
दिखाना न बल की कहीं बानगी
सुरक्षित रहे मर्द ! 'मर्दानगी'

(१२)

रक़म दूसरों की गटकते रहो
सटासट्ट माला सटकते रहो
बनो धर्म के धाम संसार में
अड़ाओ सदा टाँग उपकार में

(१३)

पकड़ गाय दो-चार चन्दा करो
न पानी पिलाओ न चारा धरो
स्वयम् मौज मारो मज़े में रहो
भजो भोर गोपाल ! 'शिव ! शिव !! कहो'

(१४)

न भूलो कभी 'ब्रादरी' को भला
इसी में छिपी विश्व की हैं कला
किसी पंच का कोप होने न दो
कभी प्रेम का बीज बोने न दो

(१५)

भरो पाप की पोट डरना नहीं
कभी पुण्य का काम करना नहीं
झुकाओ, हमें थैलियाँ प्रेम से
रहोगे हमेशा कुशल-क्षेम से

पद्वी-पतुरिया

(१)

"गोरे गुरुगण की खातिर में,
खरच करूँगा दाम,
दमकेगा दुमदार सितारा,
बनकर जुगनू नाम।
खितावों को फटकारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।"

(२)

"जग में जीवन-भर भोगूंगा,
मनमाने सुखभोग।
परम रङ्क महँगी के मारे,
प्राण तजें लघु लोग।
उन्हें तो भी न निहारूँगा,
किसी से कभी न हारूँगा।"

भाई, भिड्डुनमिश्र!

लो, काम बन गया! बरसों की मिन्नत-खुशामद और मेल-मुरब्बत का नतीजा निकल आया—'अमित काल मैं कीन्ह मजूरी, आज दीन्ह विधि सब भरपूरी।' जिसके लिए हम आठ पहर चौंसठ घड़ी राम-रटना लगाये रहते थे, अन्त में वह 'पदवी-पतुरिया' प्राप्त हो ही गई! बलिहारी है, हमारी हिम्मत को, और बधाई है हमारी हमको! मगर भाई, दुनिया बड़ी

बेढंगी है, उससे कृतज्ञता कर्पूर हुई चली जा रही है। कितने ही लफ़ंगे लनतरानियाँ हाँकते हुए हम से कहते हैं कि—'पदवी-प्रेयसी को वापस करदो।' शिव ! शिव !! जिस ख़िताब-ख़ातून की ख़ातिर, हुज़ूर की ख़िदमत में हाज़िर होते-होते हड्डियों में हड़कन होने लगी, उसे वापस करदें—घर आई लक्ष्मी को फेर दें ! ह ह ह ह !!! लोगों को ज़रा शऊर नहीं है।

जिन साहबों की ठोकरों से ठुकराये जाने के लिए लोग लालायित रहते हैं, जिन श्रीमानों के श्रीमुख से ऊल-जलूल सुनना सौभाग्य समझा जाता है, जिन तिल्लोतोड़ों की तिरछी त्यौरी कृपा-कटाक्ष के नाम से पुकारी जाती है, उनकी प्रदत्त प्रशस्त पदवियाँ त्याग दी जायँ ! क्या खूब ! लोग नहीं जानते कि ये देव-दुर्लभ उपाधियाँ कितनी तीव्र तपश्चर्या और कैसे प्रचुर परिश्रम से प्राप्त होती हैं। अरे भाई ! जब अँगरेज़ों की अर्चना और भाइयों की भर्त्सना करते-करते जीभ पर छाले और हलक में फाले पड़ जाते हैं तब कहीं यह ख़ुश क़िस्मती हासिल होती है। डालियाँ लगाते और गालियाँ खाते जब पूरी 'सहिष्णुता' आ जाती है तब यह सुदिन दिखाई देता है। क्या तुम्हें नहीं मालूम कि 'पदवी-पतुरिया' की प्राप्ति के लिये राजनैतिक सभा-सोसाइटियों में जाना तो दर-किनार, मैं उनके समाचार पढ़ कर कुल्ला और सुनकर कान साफ़ किया करता हूँ। 'वंदेमातरम्' पत्र छूकर, भयङ्कर शीतकाल में भी कई बार हाथ धोने पड़ते हैं। राजनीति के कीटाणु नष्ट करने के लिए, छह-छह वार 'फ़नायल' छिड़कवाई जाती है। असहयोगियों की परछाईं पड़ने से तीन-तीन वार स्नान करना पड़ता है। सार्वजनिक संस्थाओं को चन्दा देना भयङ्कर पाप समझता हूँ। असहयोग आन्दोलन में भाग लेकर, देश से अनुराग रखना बिलकुल विसार दिया है। साहबों को रिझाने

और हुज़ूरों को मनाने में ही मेरे धन का सदैव सदुपयोग हुआ करता है। मतलब यह है कि जब मैंने साहबों को सर्वस्व और अपना ध्येय बना लिया तब कहीं पूरी प्रार्थना और ऊँची उपासना के पश्चात् 'पदवी-पतुरिया' के सुन्दर स्वरूप की झाँकी

जो हो, अब हम 'पदवी पतुरिया' के प्राण प्यारे और प्राणनाथ हैं। सब जगह हमारा सम्मान होगा। दरबार में सबसे आगे नहीं तो पीछे ज़रूर कुर्सी मिलेगी। हाँ में हाँ मिलायेंगे और आनन्द पायेंगे। साहबों की सेवा करेंगे और मेवा खायेंगे। देश को दुरदुरायेंगे और सारे झगड़ों से छूट जायेंगे। हम होंगे और हमारा नाम, तुम जानो और तुम्हारा काम! एक बात और की जायगी अर्थात् जहाँ तक मुमकिन होगा, इन हिन्दुस्तानियों से बातें कम करेंगे। ये अजीब जन्तु न मौक़ा देखते हैं न महल। मन में आता है तभी देश-सुधार के भौंड़े राग अलापने लगते हैं। एक गवैया रात को बड़ी बेहूदी रागनी रेंक रहा था, मेरी नींद उचट गई और उसकी दो-एक कड़ी मुझे अब तक याद हैं:—

खुशामद ही से आमद है,
बड़ी इसलिए खुशामद है।
एक दिन राजाजी उठ बोले बैंगन बहुत बुरा है,
मैंने भी कह दिया इसी से बेगुन नाम पड़ा हैं,
फ़ायदा इसमें बेहद है,
बड़ी इसलिए खुशामद है।

दूजे दिन हुजूर कह बैठे, बैंगन खूब खरा है,
मैंने भी झट कहा, इसी से उस पै ताज धरा है,

नहीं होती इसमें भद है,
बड़ी इसलिए खुशामद है।
यदि राजाजी दिवस कहें तो दिनकर हम दमका दें,
जो वे रात बतावें तो फिर, चन्दा भी चमका दें,
इसी से हँडिया खदबद है,
बड़ी इसलिए खुशामद है।।

पशु-पक्षियों की 'पार्लियामेंट'

निर्जन जंगल के विशाल मैदान में, आधी रात के आध घण्टे बाद पशु-पक्षियों की एक महती सभा बैठी। इसमें सब प्रकार के पशु-पक्षियों के प्रतिनिधि शामिल थे। दर्शक-रूप से भी बहुत-से लोग विद्यमान थे। सभापति का आसन श्रीमान् वीरवर केसरीसिंहजी ने सुशोभित किया था। जिस समय सभापति महाशय, चौधरी चीताराम, पं० बघर्रामल और लाला लकड़बग्घामल के साथ, सभामण्डप में पधारे, उस समय प्रतिनिधियों के हर्ष का ठिकाना न रहा! सबने अपनी-अपनी भाषाओं में उनका एक साथ स्वागत किया। रेंकने, भोंकने, चीखने, चिंघाड़ने, रँभाने, बलबलाने, मिनमिनाने, चहचहाने आदि की सम्मिलित तुमुलध्वनि ने युगान्तर उपस्थित कर दिया! सबसे पहले श्रीमती लोमड़ी, श्रीमती बिल्ली और श्रीमती कुक्कुरीदेवी ने स्वागत-गान गाया। फिर मिस्टर भेड़ियाराम खड़े हुए और आपने आध घण्टे में सारा स्वागत-भाषण पढ़ डाला। सभापति महोदय ने उपस्थित प्रतिनिधियों को धन्यवाद देते हुए कहा—

"भाइयो, आज की सभा का उद्देश्य हज़रत इन्सान से असहयोग करना है। इस दुष्ट के द्वारा, हम लोगों को जो घोर कष्ट पहुँचाया जाता है, उससे हम बहुत दुखी हैं। आत्म-रक्षा के उपायों पर विचार न करना कायरता है। मैं अपना भाषण पीछे दूँगा; पहले आप लोग निर्भय और निःसंकोच होकर अपने विचार प्रकट करें। देखिये, सभा में गड़बड़ी न

होने पावे। विविध मत-सम्प्रदायों और सूरत-शकलों के प्रतिनिधियों की यह पहली 'पार्लियामेंट' है। अतएव एक को दूसरे के भावों का पूरा ध्यान रखना चाहिये। एक बात और ध्यान में रहे, हम लोग आपस में भले ही मतभेद रखें, पर, इन्सान के मुक़ाबिले में सब को एक होकर संयुक्त मोर्चा बनाना चाहिये। अच्छा, अब श्रीमती गायदेवीजी अपना भाषण देंगी।"

गौरवशीला गोमाता

श्रीमती गोमाताजी ने पूँछ हिला कर रँभाते हुए कहा—'भाइयो, कैसे दुःख की बात है, मनुष्य मुझे पकड़ कर अपने घरों में बाँध लेते हैं। मेरे आगे कूड़ा-करकट फेंक कर सारा दूध गटक जाते हैं, मेरी प्रिय सन्तान देखती ही रह जाती है! सब जानते हैं कि माता का दूध उसके बच्चे के लिये होता है, पर, मेरा दूध दूसरों के लिए है। बुड्ढी होने पर मैं 'ब्राह्मण' को 'पुण्य' कर दी जाती हूँ। जहाँ से मेरा सीधा "स्लाटर हाउस" को चालान हो जाता है। मेरे पुत्र शीत-घाम की कुछ भी परवा न कर, पूर्ण पुरुषार्थ के पश्चात् रूखा-सूखा भूसा पाते हैं। इस घोर अन्याय का नाम मनुष्यों ने 'परोपकार' और 'गो-रक्षा' रख छोड़ा है। बाज़ आई मैं इस परोपकार से! मेरे खाने के लिए परमात्मा ने बहुत दिया है, मैं नहीं चाहती कि परोपकार के 'पोटले' ये इन्सान मेरी जाति पर और अधिक अन्याय करें।

इस वक्तव्य का समर्थन, भाषण-पटु भैंस और विवेकशीला बकरी ने भी बड़े मर्मस्पर्शी शब्दों में किया और कहा—'दरअसल हमारे साथ घोर अन्याय होता है।'

श्रीगर्दभदेवजी

महाशयो, मेरी कथा न पूछिये, मेरे जीवन से तो मौत ही भली है। रात-दिन काम करना, पीठ पर डण्डे खाना, भूख से घबराना, बस, यही मेरी क़िस्मत में बदा है! इतना घोर पुरुषार्थ करने पर भी हज़रत इन्सान मुझे बेवक़ूफ़ कहकर पुकारता है, कान पकड़ कर बुलाता और डण्डे मार कर चलाता है। हे सभापति! मुझे इस घोर दुःख से बचाइये, मैं मर जाऊँगा, मुझे मनुष्य को यह 'परोपकारिता' नहीं चाहिये। सच समझिये, अगर मैं इतना परिश्रम, व्याकरण पढ़ने में करता तो, आज महामहोपाध्याय हो जाता, तप में सहिष्णुता दिखाता तो तपस्वी बन जाता। परन्तु सज्जनो, हमारा तो लोक बना न परलोक! इतना कह कर श्रीगर्दभदेवजी का कंठ रुँध गया और वे बीच में ही बैठ गये!

कुँवर कुत्ताकुमारजी

सज्जनो, आप जानते हैं, मैं भाई भेड़िया का चचाज़ाद भाई हूँ। परन्तु इन्सान के कुसंग ने मुझे परमुखापेक्षी और चापलूस बना दिया है। एक टुकड़े की ख़ातिर मुझे उसकी अज़हद खुशामद करनी पड़ती है। यहाँ तक कि मैं अपने सगोत्री भाइयों से भी प्रेमपूर्वक वार्त्तालाप नहीं करता, बल्कि सदैव द्वेष दर्शाता रहता हूँ। पर, तो भी मुझे पेट-भर रोटी नहीं मिलती! हमारे कितने ही भाइयों ने, स्वामि-भक्ति के कारण इन्सान के लिए—टुकड़ों और केवल टुकड़ों के लिए—अपने अमूल्य शरीर बलिदान कर दिये, परन्तु इस खुदग़रज क़ौम को हमारे हाल पर तनक भी तरस न आया! उसने मेरे विरुद्ध नाना प्रकार की किम्वदन्तियाँ गढ़ डालीं! हमारा घोर अपमान

किया ! चाकरी को निन्दापूर्वक 'श्वानवृत्ति' के नाम से पुकारा और बुरी मौत को 'कुत्ते की मौत कहा ! क्या इसी का नाम कृतज्ञता है ? क्या सच्ची सेवा का यही प्रशंसनीय फल है कि हम तो इन्सान के लिए प्राण तक देदें, अपने कुनवे को भी त्याग दें, परन्तु हज़रत इन्सान रोटी के टुकड़े तक से हमें महरूम रक्खें, और कभी कुछ खिलादें तो इस 'उपकार' पर फूले न समाएँ। मैं ऐसे नाशुकरे इन्सान पर लानत का प्रस्ताव पास करने की प्रार्थना करता हूँ।

भाई भेड़ियामल

उदार भाइयो, मुझे अपने चचेरे भाई कुत्ते की कष्ट-कथा सुन कर घोर दुःख हुआ। वास्तव में, अपने जातीय गौरव को भूल कर, भाइयों का साथ न देने वालों की, ऐसी ही दुर्गति होती है। निस्सन्देह कुत्ता हमारा भाई है, परन्तु वह टुकड़ों की ख़ातिर दूसरी क़ौम का ग़ुलाम बन गया !

[नोट—यहाँ माननीय सभापतिजी ने भाई भेड़ियामल को यह कह कर रोक दिया—'तुम्हें अपनी शिकायतें पेश करनी चाहिए थीं, दूसरों के सम्बन्ध में, आक्षेपपूर्वक कुछ कहने या उनकी आलोचना करने का अधिकार तुम्हें नहीं दिया गया।' यह सुनकर भाई भेड़ियामल उदास होकर बैठ गये। फिर हज़रत हाथीख़ाँ को बोलने की आज्ञा मिली।]

हज़रत हाथीख़ाँ

सज्जनो, हमने भी कम कारनामे नहीं दिखाये, पर, अब नयी रौशनी वाले इन्सान द्वारा हमारा जो निरादर है, उसे हम कह नहीं सकते ! भला कुछ ठिकाना है ! क्या इन्सान को अक्ल इसलिए मिली है कि वह 'अंकुश' के रूप में, हमारे विशाल भाल

पर आक्रमण करता रहे। इतने बड़े हम गजराजों के लिए यह शर्म की बात है! लोकतन्त्र-शासन के युग में इस प्रकार अपमानित होना कोई पसन्द न करेगा। शिकार के समय हम अपनी छाती अड़ा देते हैं, पर, अपने ऊपर बैठे हुए इन्सान तक चोट नहीं आने देते। गहरी नदी में खुद घुस जाते हैं, पर, अपने शासक सवार पर, छींटे नहीं पड़ने देते। ज़रा पुराना इतिहास उठा कर पढ़िये, हमारे कैसे-कैसे कारनामे हैं। आजकल के लोगों ने हमें ज़नाना बना दिया! हम भी देशी राजाओं की तरह, बस, योंही कभी-कभी जलूसों की शोभा बढ़ाने वाले दिखावटी समझे जाने लगे। हमारा सब शौर्य नष्ट किया जा रहा है। इतने बड़े महायुद्ध हो गये पर हमारा उनमें नाम तक नहीं! इससे अधिक हाथियों का अपमान और क्या होगा? अगर मेरा बस चले तो, मैं इस 'अक्ल के पुतले' इन्सान की सारी समझ ठीक कर दूं। भाइयो, साहस करो, अगर आप सब लोग लीद भी करदें तब भी उससे सारा मनुष्य-मण्डल दब सकता है। निरंकुश होते हुए भी आप एक अंकुश के इशारे नाच रहे हैं, यह दुःख की बात है।

ठा० घोड़ासिंह

भाइयो और भाभियो, हमारी जाति ने इन्सान का अपूर्व हित किया है। जिस समय न 'मोटर' थी न 'साइकिल' और न हवाई जहाज़ थे, उस समय हम ही इन्सान को सर्वत्र घुमाते-फिराते थे। हमारी क़दर भी बहुत होती थी, परन्तु जब से ये 'पोंपों' या 'भोंभों' चली हैं, तबसे हमारी बहुत बेक़दरी हो गई। जिन अस्तबलों में पहले हम हर्ष से हिनहिनाया करते थे, आज उनमें 'पेट्रोलियम' की दुर्गन्ध आती है। ज्योंही मनुष्य 'मोटरकार' ख़रीदने योग्य होता है, त्योंही वह उसे ख़रीद कर हमें जवाब दें देता है! यह संक्रामक रोग बराबर बढ़ रहा है। रिकशाओं ने

तो और भी ग़ज़ब ढादिया, ये 'फिट-फिट' करती हुई अलग हमारा जी जलाए डालती हैं। अगर यही दशा रही तो थोड़े ही दिनों में हमारी कोई बात भी न पूछेगा, हम लोग 'किराये के 'टट्टू' से अधिक अपनी पोज़ीशन न रख सकेंगे। आप जानते हैं, 'टट्टू' नामधारी हमारे लघु भ्राताओं की कैसी दुर्गति है ? उनसे बोझ ढुलाया जाता है, कूड़ा उठाया जाता है, पाखाना फिकवाया जाता है, इक्कों में जोत-जोत कर उनके कमर-कन्धों पर ज़ख्म कर दिये जाते हैं। भले ही मक्खियाँ भिनभिनाती रहें, पर, हज़रत इन्सान को इससे क्या ? क्या यह हमारे उपकारों के प्रति घोर कृतघ्नता नहीं है ? क्या उदारचेता वीर-शिरोमणि 'चेतक' के कुल की यह दुर्दशा होनी चाहिये ? भाइयो, भावी आपत्ति का अभी से इलाज करो।

चौधरी उष्ट्रसिंह

भाइयो, क्या कहें इन्सान का बोझ ढोते-ढोते मरे जाते हैं; गाड़ियाँ खींचते-खींचते अक़्ल हैरान है ! जिस मरुभूमि में, हमारे प्रतिनिधि भाइयों में से कोई घूमना पसन्द न करेगा, उसमें हमें भभकती भूभल पर चलना पड़ता है। अगर हम न हों तो, इन्सान की सारी अक़्ल ठिकाने आजाय। परन्तु तो भी हमारे चारे का कोई प्रबन्ध नहीं ! स्वयम् पत्ती तोड़ना और पेट भरना। काम तो लिया जाय पर खाना न दिया जाय, यह कहाँ का इन्साफ़ है ? हमें मनुष्य की दयालुता नहीं चाहिये, हम तो उसके आश्रय के बिना ही अच्छे हैं।

इसके बाद सभापति श्री केसरीसिंहजी ने कहा—'अब दूसरे वर्ग के प्रतिनिधि बोलेंगे। पहले पक्षियों की 'स्पीच' होगी फिर बिल-वासियों को अवसर दिया जायगा।'

मि० तोताराम

सज्जनो, इन्सान कहता है कि मैं प्यार का पुतला हूँ, गुणों का ग्राहक हूँ। परन्तु यह सब उसका ढोंग है। आप जानते हैं, मेरी जाति के लोग बातून ज़्यादा होते हैं; खूब मीठी-मीठी बातें बनाते हैं। बस, इसीलिए हज़रत इन्सान ने अपने कन-रसियापन के कारण, 'अहिंसा' के नाम पर, हमें पिंजड़े में बन्द करना शुरू कर दिया! देखिये, पिंजरबद्ध बन कर मेरे भाइयों का सारा जीवन नष्ट हो गया! वे नहीं जानते कि स्वतन्त्र वायुमण्डल में सांस लेना कैसा होता है? हमारा स्वातन्त्र्य और स्वास्थ्य नष्ट करके मनुष्य कहता है—"मैंने पक्षियों की रक्षा की है! उनको दाना खिलाया और बचाया है! मैं परोपकार का पुंज और अहिंसा का अवतार हूँ!" परन्तु भाइयो, लानत है इस "परोपकार" पर जो हमें नष्ट-भ्रष्ट करके किया जाता है? परमात्मा ज़मीन पर रेंगने वाली चींटी को भी खाना देता है तो क्या हम व्योम-विहारी होकर भूखों मर जायँगे! हम खुदग़रज़ इन्सान की ऐसी बातों से बहुत तंग हैं।

श्रीमती मैना देवीजी ने इस व्याख्यान का समर्थन किया। और भी कई पक्षियों ने बोलने को पङ्ख फड़फड़ाये परन्तु सभापतिजी ने उन्हें यह कह कर रोक दिया कि 'समय थोड़ा है, सुबह होने वाली है, अतः अब बिल-वासी लोग कुछ कहें।'

प० चुहियाचरणजी

सज्जनो, मुझे अपनी जाति की दुर्दशा देखकर बड़ा दुःख है। आप जानते हैं कि प्रथम तो हमारे छोटे-से शरीर पर पृथुलतुन्द श्री गणेशजी को सवार करा कर देवताओं ने घोर अन्याय किया है। ख़ैर, उनकी बात भी जाने दीजिये। ये अहिंसाभिमानी मनुष्य

हमारे नाश का नित नया उपाय सोचते रहते हैं। कभी पिंजड़ों में पकड़ कर हमारा नाश करते हैं और कभी हमारे घरों में ज़हर की गोलियाँ पटकते हैं, जिससे हम मर जायँ। "अशरफ़-उल-मखलूक़ात" इन्सान की इस हिमाकत से अब तक हमारे हज़ारों-लाखों भाई, अपनी ऐहिक लीला समाप्त कर, परलोक वासी बन चुके हैं! ये भलेमानस यह नहीं समझते कि 'प्लेग' आने की सबसे प्रथम सूचना हम अपने शरीरों को बलि-वेदी पर चढ़ा कर देते हैं। हमारी इस सूचना से जो लोग प्लेग-प्रभावित स्थान को छोड़ देते हैं, वे बच जाते हैं। इस उपकार का बदला हमें मिलता है—'सर्वनाश'! बलिहारी है इस इन्सानियत की! और देखिए, आज चारों ओर 'सुधार-सुधार' और 'उन्नति-उन्नति' का ढोल पिट रहा है, परन्तु कोई यह नहीं सोचता कि इन तरक्क़ियों के तरानों का 'श्रीगणेश' कहाँ से हुआ। भाइयो, बताइये यदि हम शिवरात्रि को, टंकारा के एक शिवालय की शिवमूर्ति पर, चावल चबा कर, मूलशंकर को उपदेश न देते तो, ऋषि दयानन्द कहाँ से आते, और भारतोद्धार का सूत्रपात कौन करता! इन सब उपकारों का बदला इन्सान की ओर से हमें मिलता है—'सर्वनाश'! कैसे दुःख और कितने परिताप की बात है?

बाचाल बन्दर और बीबी बिल्ली

दोनों ने एक स्वर से कहा, हमारी राय में, हमारे पूर्व वक्ताओं ने हज़रत इन्सान पर झूठे इलज़ाम लगाये हैं। हमें देखिये, हम स्वतन्त्रतापूर्वक चरते-विचरते हैं, और मनुष्य से खूब छीन-झपट कर खाते हैं, परन्तु हमारा कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। बिल्ली ने कहा—'मैं तो घरों के कोने-कोने में घुस जाती हूँ और खूब मौज उड़ाती हूँ।' बन्दर बोला—'हनुमान बन कर

गुड़धानी खाना और गुर्राना हमारा काम है। बात वास्तव में यह है कि इन्सान से बाज़ी मारने के लिए चातुर्य की ज़रूरत है, जो जितना ही सीधा-सादा होता है, वह उतना ही पिटता है। महाशयो, हमें इन्सान की कोई शिकायत नहीं।'

सभापति का भाषण

इसके बाद सभापति श्रीकेसरीसिंह का भाषण हुआ। आपने कहा—

'भाइयो, मैंने सब व्याख्यान ध्यानपूर्वक सुने। वास्तव में इस 'अशरफ़-उल-मख़लूक़ात' कहे जाने वाले इन्सान ने हम लोगों का नाक में दम कर रखा है। आप लोगों की कष्ट-कथा सुन कर, मेरे दुःख का ठिकाना नहीं रहा! आप यह न समझें कि मेरी जाति के लोग पशुपति-परिवार के होने से सुखी हैं। हमारी जाति पर भी इन्सान का घोर अत्याचार होता है। हमें तो वह देख ही नहीं सकता, खबर लगते ही मारे गोलियों के हम हलाक कर दिये जाते हैं। हमें कठहरों में बन्द करके हमारी स्वाधीनता छीन ली जाती है। किसी समय हम सारे देश में आनन्द से चरते-विचरते थे, पर, अब तो वेदज्ञों की तरह हमारे परिवार के लोग भी केवल कहीं-कहीं दिखाई देते हैं। इन्सान की जितनी शत्रुता हमारे वंश से है, उतनी किसी से नहीं। अभी आपने हज़रत बन्दर और बीबी बिल्ली के व्याख्यान सुने; उन्होंने इन्सान की हिमायत की है, पर इन भूले भाई और भटकी बहिन को यह नहीं ख़बर कि उचक्कापन करना या छीना-झपटी से काम लेना पशु-परिवार की वंशपरम्परा के प्रतिकूल है। इसके लिये मनुष्यों के 'राष्ट्र' नामधारी समुदाय ही बहुत हैं। क्या हज़रत बन्दर क़लन्दरों द्वारा लकड़ी के बल नहीं नचाये जाते? क्या उन्हें अपने पेट दिखा-दिखा कर टुकड़े नहीं माँगने पड़ते? इस घोर घृणित

व्यवहार पर भी वह इन्सान का पक्ष लेते हैं, शर्म की बात है! (चारों ओर से शर्म ! शर्म !! शर्म !!!)

'बीबी बिल्ली का लुक-छिप कर इन्सान के जूठे बर्तनों को चाट लेना, या दाव-घात से कुछ खा-पी आना कोई गौरव की बात नहीं है। इसके लिए इन्हें अभिमान न करना चाहिए। अच्छा, मैंने अब खूब सोच लिया, और सबके उद्धार की एक बात सूझी है। महामहोपाध्याय श्रीगजराजजी और हम जैसे शक्तिसम्पन्न वीरवरों पर, क़ाबू करना, हमारे अन्य बलहीन भाइयों को सताना, हमारे विनाश के लिए गोला-बारूद, तलवार, बन्दूक आदि बनाना ऐसी बातें हैं जो अल्पशक्ति मनुष्य की बुद्धि के कारण ही हो रही हैं। बुद्धि न हो तो यह इन्सान साधारण कीट-पतङ्गों से भी घटिया दरजे का बना रहे। सारे अनर्थों की जड़ मनुष्य की बुद्धि है, इसलिए मेरी सम्मति में इस महासभा से, यह प्रस्ताव पास करके, 'ख़ुदावन्द ताला' के पास भेजना चाहिए कि वह इन्सान से अक़्ल छीन कर, अपनी प्यारी प्रजा में सुख-शान्ति स्थापित करे, और हम लोगों पर अत्याचार न होने दे।' उपस्थित समुदाय ने गगनगामिनी गर्जना-पूर्वक सभापति के प्रस्ताव का समर्थन किया और वह सर्व-सम्मति से पास हो गया। सभा बरख़ास्त हुई और सब लोग अपने-अपने घरों को सिधारे।

भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल

होलीपुरा के 'हुल्लड़-पार्क' में, "अखिल भारतीय मुछमुण्ड-मण्डल" का महाधिवेशन, खूब धूमधाम से मनाया गया। डेढ़ लाख निमुच्छे प्रतिनिधि सभामण्डप में मौजूद थे। दर्शकों के रूप में, स्त्रियाँ, संन्यासी तथा बालक भी अधिक संख्या में उपस्थित थे। स्वागत-भाषण के पश्चात् सभा के पति "हिज़ हैवीनेस" मिस्टर निमुच्छानन्द महाशय का प्रभावशाली व्याख्यान हुआ, जिसकी अविकल रिपोर्ट नीचे दी जाती है। स्वीकृत प्रस्तावों की सूची फिर छपेगी, पाठकों को उत्सुकता-पूर्वक प्रतीक्षा करनी चाहिये।

सभापति का भाषण

निमुच्छ महाशयो, आप लोगों ने आज मुझे इस "आल-इण्डिया मुछमुण्ड-महासभा" का प्रधानत्व प्रदान कर, अवश्य ही अपना कर्त्तव्य-पालन किया है। निस्सन्देह, में सब दृष्टियों से इस 'मुच्छहीन-मजलिस' का मीर होने लायक हूँ। मुझसे अधिक उपयुक्त व्यक्ति, इस काम के लिये आपको और कोई न मिल सकता था। इस कर्त्तव्य-पालन और खोज के लिये मैं आपको हार्दिक बधाई देता हूँ। परन्तु किसी प्रकार के धन्यवाद की आवश्यकता नहीं समझता। आज मुझे, इस बड़ी सभा में, मुछ-मुण्डों को अधिक संख्या में देख कर बड़ा हर्ष होता है।

आप जानते ही हैं, मेरी ६६ वर्ष की आयु हो गयी, परन्तु आज तक मनहूस मूछों को मेरे खूबसूरत चहरे पर, अपना क़ब्ज़ा करने की जुरअ़त नहीं हुई। मैं जानता ही नहीं कि मूछें क्या

होती हैं, और उनका कुल-संहार करने के लिए छुरा कैसे चलाया जाता है ? जैसा सुन्दर-सपाट चहरा आज से ५० वर्ष पूर्व था वैसा ही अब भी है । दाँत उखड़ गये हैं तो क्या है, बदसूरती तो नहीं आई; खाल सिकुड़ गई सही परन्तु उस पर बाल का अधिकार तो नहीं हुआ । ऐसी दशा में मुझे मुछमुण्डता का "जन्मसिद्ध अधिकार" प्राप्त है, और मैं ही अपने को इस सभा का सभापति होने का सबसे अधिक अधिकारी पाता हूँ ।

आप लोगों ने भी मूछों का बहिष्कार कर बड़ा काम किया है । सन्तोष की बात है कि आप में से कुछ सज्जन तो रोज़ और कुछ दिन में दो-दो बार छुरे की पैनी धार से इन दुष्टाओं का दर्पदलन करते रहते हैं । आप सब मुछमुण्ड महाशयों से मेरा सविनय अनुरोध है कि जहाँ तक हो, और जब तक पेश चले मूछों के झाड़झंकार को मुखमण्डल पर न उगने दो । इनकी जड़ों पर उसी प्रकार कुठाराघात करो, जिस तरह चाणक्य ने कुश-मूल नष्ट करने के लिये किया था ।

भाइयो, यह ठगिनी प्रकृति भी बड़ी विचित्र है, भला उसे इन मूछों के कूड़े-करकट को, इस चमकते चहरे पर जमा करने की क्या ज़रूरत थी । इससे फ़ायदा तो कुछ है ही नहीं; हाँ यह नुकसान ज़रूर है कि जिस समय से इन कर्कशाओं के काँटे, सुन्दर अधरों पर अंकुरित होते हैं, उसी समय से ललित लालिमा पर कुत्सित कालिमा पुतने लगती है । ज्यों-ज्यों मूछों का दर्प बढ़ता है, त्यों ही त्यों, उसका दलन करने के लिए, करों को कष्ट करना पड़ता है । जब तोड़ते-मरोड़ते, उखाड़ते-पछाड़ते, ऐंठते-अमेंठते हुए भी आप लोग मूछों को क़ाबू में नहीं कर सके तभी तो उन्हें उस्तरे के घाट उतारने की सूझी । मगर, वाहरी निर्लज्जता ! ये कम्बख़्त इतनी बेशर्म हैं कि रज़ो

मुंह मसले जाने पर भी सिर उठाये बिना नहीं रहतीं ! नित्य छुरा चलने पर भी अपनी शरारत से बाज़ नहीं आतीं !

मुछक्कड़ लोग कहते हैं कि बिना मूछों के चहरा बदसूरत हो जाता है, परन्तु यह उनकी कपोल कल्पना मात्र है। आप रात-दिन स्त्रियों, बालकों और संन्यासियों को देखते हैं, मैं तो समझता हूँ, इनकी सुन्दरता मूछों के न होने के कारण ही और बढ़ जाती है। आप लोग स्वयम् अपने सपाट मुँह पर हाथ फेरिये, शक्लों को शीशे में देखिये, कितनी कोमलता और सुन्दरता मालूम होगी। अहा ! टेढ़ी-तिरछी, कपटी-चपटी, अकड़ती-सिकुड़ती, गुर्राती-हाहाखाती मूछों को मिटा कर, आपने मिथ्या भेद-भाव दूर कर दिया और सचमुच अपने को नवयुवक बना लिया है। इस समय आप लोगों के निमुच्छे मुख-मण्डलों से अपूर्व कान्ति टपक रही है।

स्वास्थ्य की दृष्टि से तो मूछों का विधान बहुत ही बुरा है। इस बात का कटु अनुभव मुछक्कड़ों को जुकाम के वक्त या दूध पीते अथवा रायता सपोटते समय होता है। सारी मूछें सन कर बरसाती छप्पर की तरह, टपकने लगती हैं। जो लोग 'सिगरेट' पीते हैं, उन्हें तो इनकी बड़ी ही हिफ़ाज़त करनी पड़ती है, कहीं इन तक आँच न आ जाय। कभी-कभी तो ये कम्बख़त खुद चुरट की चिता में पड़ कर ख़ामख़ाह 'सती' हो जाती हैं। ऐसी दशा में, महाशयो, मैं नहीं समझता कि मूछों के पक्ष में लोग क्यों अपनी सम्मति दिया करते हैं।

जिस समय वृद्धावस्था पदार्पण करती है, उस समय ओठों पर 'तिल-चामरी' मूछें उसी प्रकार दिखाई देती हैं, जिस प्रकार किसी मनहूस मैदान में खड़ी, गोरे-कालों की पिटी पिटाई पल्टन ! ज्यों-ज्यों स्याही पर सफ़ेदी पुतती जाती है, त्यों ही त्यों चहरा,

राजपूताने की मरुभूमि-सा बनता जाता है। कैसा ही सुन्दर, सुडौल, सजीला मुख-मण्डल क्यों न हो, भूरी मूछें सारा मज़ा मिट्टी में मिला देती हैं। कोई 'बाबा' कहता है तो कोई 'नाना', कोई वृद्ध कहता है तो कोई 'बुज़ुर्ग'। कालौंच के क़िले पर सफ़ेदी का झण्डा क्या फहराता है, सारा नक़शा ही बदल जाता है! तभी तो तंग आकर महाकवि केशवदास ने कहा था—

केशव 'मूँछन' अस करी, जस अरि हूँ न कराहिं;
चन्द्रवदनि मृगलोचनी, 'बाबा' कहि-कहि जाहिं।

सो भाइयो, इन 'बाबा' बनाने वाली, वैरिनों से भी बढ़कर मूछों से बचो, इन सब आपत्तियों से बचने की एकमात्र अमोघ औषधि 'मुछमुण्डता' है—और कुछ नहीं।

निमुच्छ महाशयो, आपको मालूम है कि भारत के भूत वाइसराय लार्ड कर्ज़न ने मूछों पर छुरा चला कर किस प्रकार अपने नाम के पीछे 'मुछमुण्ड फ़ैशन' (कर्ज़न फ़ैशन) चलाया? इसकी कथा बड़ी विचित्र हूँ। सुनिए, एक दिन मुछक्कड़ कर्ज़न अपनी नवपरिणीता प्रियतमा के कोमल कपोलों पर प्रेम-पीयूष प्रवाहित करने लगे, इतने में ही उनकी पत्नी ने, प्रेमपगी वाणी में झिड़क कर कहा—"Are you kissing me or brushing me?" "प्राणनाथ! आप प्यार कर रहे हैं, या अपनी मूछों के कड़े बालों की कुची से मेरे चेहरे पर खुरहरा करते हैं?" बस, प्राणप्यारी के ये युक्तियुक्त समीचीन शब्द सुन कर कर्ज़न साहब ने अपनी मूछों को उस्तरे की नज़र कर दिया और फिर आजन्म उनका आदर न किया! आज आप लोगों को उसी 'मुछमुण्ड महाशय' के अनुयायी होने का गौरव प्राप्त है। परमात्मा 'मुछमुण्डमत' के आद्याचार्य लार्ड कर्ज़न और उनकी

प्रियतमा पत्नी की आत्मा को चिर शान्ति प्रदान करे, जिन्होंने हमारे ऊपर ऐसा बड़ा उपकार किया।

मुछमुण्ड महाशयो, यह कोई विनोद नहीं है, इसे कपोल-कल्पना न समझिये। अगर आप प्राचीन और नवीन इतिहास के पृष्ठ पलट कर देखेंगे तो, आपको सर्वत्र 'मुछमुण्डता' की ही महिमा दिखाई देगी। संसार के उद्धार-कर्त्ता मर्यादापुरुषोत्तम राम सदैव मुछमुण्ड रहे, आनन्दकन्द व्रजचन्द श्रीकृष्णचन्द ने कभी मूछों से सहयोग नहीं किया। मैं चेलेंज देकर पूछता हूँ कि क्या संसार में कोई राम या कृष्ण की ऐसी एक भी तस्वीर अथवा मूर्ति दिखा सकता है, जिससे उनकी 'निमुछमुण्डता' सिद्ध होती हो। सारे अजायबघर (म्यूज़ियम) देख डालिये, 'सारनाथ' का सार निकाल लाइये, पर अहिंसा के प्रबल समर्थक महात्मा बुद्ध की प्रतिमा के मुँह पर कहीं मूछों के कूड़े-करकट का ढेर दिखायी न देगा। परम दार्शनिक शंकराचार्य के चहरे को देखिये, मूछों का चिह्न तक न मिलेगा। ईश्वरचन्द्र विद्यासागर का चहरा साफ़ नज़र आवेगा। आधुनिक युग के सबसे बड़े सुधारक ऋषि दयानन्द ने भी इस झाड़-झङ्कार को आदर नहीं दिया। अमर शहीद स्वीमा श्रद्धानन्द के सुन्दर-सपाट-मुख-मण्डल को पवित्र स्मृति कैसे भुलाई जा सकती है।

धार्मिक संसार ही नहीं, राजनैतिक जगत् का भी मुलाहिज़ा फ़रमाइये। राष्ट्रिय महासभा के मंच पर, राष्ट्रपति की स्थिति से जिन्होंने भाषण दिए हैं, उनमें अधिकांश हमारे मत के अनुयायी निमुच्छ महाशय ही थे, और हैं। दूर क्यों जाते हो, वर्त्तमान काल में आँखें पसार कर देखिये, सी० आर० दास, मोतीलाल नेहरू, जवाहरलाल नेहरू, श्रीनिवास आयंगर, सी० वाई० चिन्तामणि, श्रीनिवास शास्त्री, विपिनचन्द्र पाल, राज-

गोपालाचार्य इत्यादि—सैकड़ों नेता 'मुछमुण्ड-दल' के ही अनुयायी हैं। जो सज्जन अभी इस समुदाय के सदस्य नहीं बने वह धीरे-धीरे बनते जा रहे हैं। विलायत में जहाँ देखो वहाँ निमुच्छापन ही दिखाई देता है। राजनैतिक और धार्मिक क्षेत्र से बढ़ कर, यह निमुच्छता साहित्य-क्षेत्र में भी विहार करने लगी है। आप ग़ौर से देखें, बदरीनाथ भट्ट, लक्ष्मीधर वाजपेयी, वियोगी हरि, शिवप्रसाद गुप्त, श्रीराम शर्मा, रामनरेश त्रिपाठी, पन्तजी, मैथिलीशरण गुप्त, अमरनाथ झा, श्रीनारायण चतुर्वेदी, कृष्णकान्त मालवीय, राधामोहन गोकुलजी इत्यादि—साहित्य-सेवियों के मुँह से मूछें.........के सींग की तरह उड़ गयीं, और उड़ती जा रही हैं। 'हर्ष की बात है कि अब राजाओं में भी यह सुप्रथा प्रचलित हो चली है, और सबसे प्रथम, श्रीमान् बड़ौदा नरेश और राजा रामपालसिंह साहब ने इस ओर अपना पवित्र पग बढ़ाया है।

मुच्छहीन महाशयो, मैंने ये दो-चार उदाहरण दिये हैं, बहुत मिसालों से व्याख्यान बढ़ जायगा, समय थोड़ा रह गया है। 'स्थाली पुलाक न्यायेन' इतने से ही आप लोग सब कुछ समझ लीजिये। कोई भी अच्छी प्रथा देश में कठिनाई से प्रचार पाती है। 'मुछमुण्डता' का विस्तार भी धीरे-धीरे ही होगा, परन्तु होगा अवश्य यह हमारी ध्रुव धारणा है। विना मुछमुण्डता के देशोद्धार हो ही नहीं सकता। सबको इस पथ का पथिक बनना ही पड़ेगा। मुझे भय है कि कहीं कट्टर हिन्दू यह न कह बैठें कि इसने हँसी-खुशी के अवसर पर निमुच्छपन की कैसी बकवाद कर डाली! मूछें तो शोक में मुड़ाई जाती हैं। हाँ, इन लोगों को समझाने के उद्देश्य से मैं 'भरमी' कवि के शब्दों में कहूँगा—

जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग सुयश न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू जग काज न कीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
कछू पर पीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ,
दीन लखि दया न आनी।
मुच्छ नाहिं वे पुच्छ हैं,
कवि 'भरमी' उर आनिये।
नहिं वचन-लाज नहिं दान-गति,
तिहि मुख मुच्छ न जानिये।

बोलो, कमाया कुछ जग में 'सुयश'? किया कोई संसार का 'काज'? मिटाई दुखिया माता की 'पीर'? की दीनों पर 'दया'। पाले 'वचन' और दिया 'दान'? नहीं—तो फिर? फिर क्या, इन 'पूँछ रूपी मूछों' को मुड़ाओ और पशुता का कलंक मिटाओ! इस दृष्टि से भी मूछों की कोई आवश्यकता नहीं है! शोक?—शोक की अच्छी कही, जिसका दस-बीस रुपये का माल कोई छीन लेता है, उसके शोक का ठिकाना नहीं रहता। परन्तु जहाँ करोड़ों लाल चिथड़ों और टुकड़ों के लिए तरस रहे हों, लाखों विधवाएँ बिलबिला रही हों, और अगणित अनाथों का ठिकाना न हो, सहस्रों भाई अकाल मृत्यु के मुँह में पड़ रहे हों वहाँ शोक तो क्या हर्ष होगा? पारिवारिक शोक में तो दो-चार कुटुम्बी ही मूँछें मुड़ाते हैं; इस देश के शोक में तो सारे देशवासियों को 'मुछमुण्ड' बनना चाहिये। यही मेरी प्रार्थना है।

बस, अब मैं अपने अभिभाषण को सदाशापूर्वक समाप्त करता

हूँ। समाप्त करने के पूर्व एक बात बता देना चाहता हूँ—मेरे पास 'मुछमुण्ड-सभा' के कुछ अनुपस्थित सदस्यों के तार आये हैं, जिन्होंने इस महासभा के कार्य की सफलता चाही है, और साथ ही लिखा है कि 'मुछमुण्ड' नाम बहुत बुरा है, कर्णकटु है। उसे बदल कर महासभा का कोई शुद्ध-संस्कृत नाम रख दिया जाय। इन तार भेजने वालों में—मठों के जगद्गुरु, वृन्दावन तथा गोकुल के गोस्वामी, अयोध्या के रामफटाका आदि हैं। मेरी सम्मति में 'मुछमुण्ड' के स्थान में 'सखी-सम्प्रदाय' नाम ठीक रहेगा। यह नाम मुझे तो उपयुक्त जँचता है, आप लोग अपनी सम्मति दें। उपस्थित सदस्यों ने 'ठीक-ठीक', 'स्वीकार'-'स्वीकार' कह कर 'सखी-सम्प्रदाय' का समर्थन किया और इस प्रकार मिस्टर निमुच्छानन्द का प्रभावशाली भाषण समाप्त हुआ। बोलो 'सखी-सम्प्रदाय' की जय!

अगुआ की आत्म-कथा

(१)

वकालत का था बड़ा गुमान,
इसी पर हो बैठा वीरान।
मगर यह हप्पो चली न हाय,
बन गया मैं पूरा असहाय।

(२)

नौकरी लगी न कोई हाथ,
बड़ा था कुनवा मेरे साथ।
घूमता रहा काटता काल,
हाल सब हुआ, हाय! बेहाल!

(३)

मिला साहब से सौ-सौ बार,
न पाया तो भी उसका पार।
सही घुड़की, झिड़की, फटकार,
अन्त में गया हौसला हार।

(४)

तिजारत का भी किया विचार,
बिना धन कैसे हो व्यापार?
न कोई करता था विश्वास,
क़र्ज़ की त्याग चुका था आस।

(५)

कर रही थी महँगी रसभंग,
छिड़ी थी निर्धनता से जंग।
किसी पर चढ़ता देख न रंग,
हुआ अब और क़ाफ़िया तंग।

(६)

अन्त में जगी देश की भक्ति,
मिली फिर मुझे अनोखी शक्ति।
देश-दुर्दशा बखान - बखान,
तोड़ने लगा निराली तान।

(७)

कभी साहित्य-सिन्धु का जन्तु,
कभी था धर्म-ध्वजा का तन्तु।
बजा कर राजनीति का ढोल,
चढ़ाता रहा पोल पर खोल।

(८)

बोलता था जब मैं किलकार,
मेज़ पर मचल, दुहत्थड़ मार।
समझते थे तब सब अनजान,
"देश पर होगा यह क़ुरबान"।

(९)

मगर मैं चलता था वह चाल,
न होता बाँका जिससे बाल।
दिया उपदेश, किया आराम,
यही था बस मेरा 'प्रोग्राम'।

(१०)

'लीडरी' में है हाँ आनन्द,
इसी से है वह मुझे पसन्द।
प्रतिष्ठा पाता हूँ चहुँ ओर,
मचा कर ज़ोर-ज़ोर से शोर।

(११)

मिली है जनता रूपी गाय,
बड़ी भोली-भाली है हाय!
दुहा करता हूँ मैं दिन-रात,
न 'कपिला' कभी उठाती लात!

(१२)

भर गया अब मेरा भण्डार,
हुआ संकट-सागर से पार।
सुखों का सिन्धु हुआ परिवार,
किया जनता ने पुनरुद्धार।

(१३)

रेल का पहला, दूजा क्लास,
हमारा बना प्रवासावास।
गाड़ियाँ - ताँगे दिये विसार,
ख़रीदी बढ़िया 'मोटरकार'।

(१४)

बनाई कोठी विशद विशाल,
सजाये सुन्दरता से 'हाल'।
विदेशी है सारा सामान,
छोड़ कर खादी के कुछ थान।

(१५)

देवियाँ हैं ऐसी शौकीन,
माँगतीं वस्त्र महीन-महीन।
न भाता उन्हें स्वदेशी माल,
इसी से है यह उनका हाल।

(१६)

धार कर विमल-विदेशी 'सूट',
डाटता हूँ 'डासन' का 'बूट'।
'घरेलू' है यह मेरा वेश,
न इस पर उचित विवाद विशेष।

(१७)

मगर है 'पब्लिक लाइफ़' और,
न उसमें कहीं ठेस को ठौर।
पहन कर खद्दर की पोशाक,
जमाता हूँ जनता पर धाक।

(१८)

'छींक दूँ' या लूँ कहीं 'डकार',
खटक जाता है, त्योंही तार।
जियें जुग-जुग देशी अख़बार,
कर रहे मेरा यश-विस्तार।

(१९)

किया मैंने अपना उद्धार,
कमाकर 'कीर्ति' और 'कलदार'।
इसी विधि करे अगर सब देश,
न बाक़ी रहे क्लेश का लेश।

(२०)

जाति की करना है स्वाधीन,
लिखो तब, लेख नवीन-नवीन।
शब्द-शर और कोप की 'तोप',
इन्हीं से है, उन्नति की 'होप'[1]।

(२१)

हाथ में ले लो कलम-कुठार,
निकलने दो मुँह से फुतकार।
मारना मत 'कर्तब' की डींग,
नहीं तो निकल जायगी मींग।

१—आशा।

काव्य-कण्टक का कोप

(१)

मुझे क्यों कवियों का सरताज,
न कहते सम्पादक महाराज!
सुखा कर सेरों अपना खून,
भेजता नये-नये मजमून।

(२)

न छापा तुमने अब तक एक,
भला यह कैसी अनुचित टेक।
अगर तुम आओ मेरे पास,
दिखा दूँ, अपना मैं अभ्यास।

(३)

अभी बीते हैं दो रविवार,
लिखे हैं पोथे जिन में चार।
किलर्की करके इतना काम—
करूँ; पर हाय! न होता नाम।

(४)

कभी भारत-दुर्दशा निहार,
मुझे होता है दुःख अपार।
कभी कामिनि-किङ्किनि झनकार,
श्रवण कर, मार[1] मारता मार।

१—कामदेव।

(५)

कभी करुणा का बहता सोत,
कभी कटुता का चलता पोत।
कभी मृदुता की तरल तरङ्ग,
उमड़ती कभी भक्ति की गङ्ग।

(६)

हृदय का चित्र भाव-उद्गार,
सभी का कविता है आधार।
हुए जब अति प्रसन्न भगवान्,
तभी की कविता-शक्ति प्रदान।

(७)

बन गया मैं कविता का कूप,
फटकने लगा शब्द, ले सूप।
नाप डाले ले गज, सब छन्द,
न तो भी हुआ काफ़िया बन्द।

(८)

न सहती अलंकार का भार,
न देखी रस की सुन्दर धार।
भाड़ में झुकी भाव-भरमार,
सादगी है कविता का हार।

(९)

व्याकरण-बिल्ले का सिर फोड़।
पिंगली-पिल्ले का धड़ तोड़।
जानकारी की जान मरोड़।
कुदकती है, कविता कर होड़।

(१०)

पढ़ेंगे एक वार यदि आप,
कहेंगे—"है यह व्यर्थ प्रलाप"।
"न भाषा शुद्ध न भाव-प्रधान",
यही है कविता की पहचान"।

(११)

नष्ट हो कविता का शृङ्गार,
भ्रष्ट हो चाहे सारा सार।
छापना कर लो, पर, मंजूर,
अर्ज है- यह हुजूर पुरनूर।

(१२)

नाम का मोटा छापा छाप।
दिखाना मेरा काव्य - कलाप।
भेजना अंक अमूल्य पचास।
पठाने हैं मित्रों के पास।

सजीव रोगों के अजीब नुसखे !

आजकल शारीरिक रोगों के साथ और भी कितने ही तरह के रोग बढ़ रहे हैं, जिनकी चिकित्सा न होने से देश की बड़ी हानि होने की सम्भावना है। इसी विचार से श्रीहत—नहीं नहीं—श्रीयुत बाबा अविद्यानन्दजी महाराज ने कुछ परीक्षित प्रयोग हमारे पास प्रकाशनार्थ भेजे हैं, जो यहाँ मुद्रित किये जाते हैं। आशा है, ये नुसखे रोगियों के लिए लाभकारी सिद्ध होंगे।

लीडरतोन्माद

निदान—यह बड़ा भयंकर रोग है, इसका वेग होने पर, रोगी के दिल-दिमाग़ क़ाबू में नहीं रहते। कभी रोगी आदमियों की भीड़ में चीखता है; कभी काग़ज़ पर कुछ घसीट-घसीट कर डाकघर के बम्बे में बहाता है; कभी तार बाबू को तंग करता है, और कभी सरकार के साथ जंग करता है। मरज़ ज़्यादह बढ़ जाने पर कभी-कभी रोगी अपने घर, नगर से बाहर भी भाग जाता है और फिर वहाँ चीखता-पुकारता फिरता है।

चिकित्सा—लीडरतोन्माद के रोगी को कौन्सिल के कटघरे में बन्द कर देना चाहिये और उसे 'शोहरत' के शर्बत में, चन्दे की चाशनी मिला कर, प्रत्येक पाँच पल के पश्चात् चटानी चाहिये। अकर्मण्यता का चूर्ण भी हितकर होगा। ऐसा करने से दस-पन्द्रह वर्ष में उसे आराम हो जायगा। बाबा अविद्यानन्दजी इस नुसखे की कितने ही बीमारों पर अनेक बार परीक्षा कर चुके हैं। सब नीरोग हो गये!

'ऐडिट-अड़ङ्ग' या 'संपादन-संहार'

निदान—'एडिट-अड़ंग' अथवा 'संपादन-संहार' का रोगी दुनिया-भर के झगड़े-बखेड़े लोगों को सुनाया करता है। 'लीडर-तोन्माद' और 'व्याख्यान-व्याधि' के रोगियों को पिटते देख यह बुरी तरह रो पड़ता है ! कभी किसी की प्रशंसा के पुल बाँधता है, तो कभी किसी की निन्दा की नदी बहाता है। तिल का ताड़ और ताड़ का तिल बनाने में इसे बड़ी ख़ुशी होती है। जब इसे ज़ोर का दौरा होता है, तो, बस, 'सुधार-सुधार' और 'सदाचार-सदा-चार, बकना शुरू कर देता है।

चिकित्सा—'सम्पादन-संहार' आगन्तुक रोग है, इसलिए आयुर्वेदशास्त्र में इसका वर्णन नहीं है। इसका इलाज विदेशी चिकित्सा-पद्धति के अनुसार होता है। डाक्टर लोग इस रोगी को '१३५ ए' के एकुए में 'प्रिज़न-पिल्स' (क़ैद) या 'फ़ाइन' (जुरमाना) का फ़ास्फ़ोरस' मिला कर पिलाया करते हैं। कभी-कभी 'वी० पी०,-बहिष्कार-वटिका' का प्रयोग भी लाभदा-यक सिद्ध होता है।

'विकालत-व्रण'

निदान—यह मरज़ तो बहुत फैलता जाता है, छोटे-बड़े सब शहरों में इसके मरीज़ मिलते हैं। बड़ा संक्रामक रोग है। भार-तीय विश्वविद्यालयों के लॉ लेक्चर इस रोग के कीटाणु और भी अधिक बढ़ा रहे हैं। विकालत-व्रण का रोगी कराहता बहुत है, इसे बात-बात में मीन-मेख निकालने की बुरी आदत पड़ जाती है ! बीमार लोग रोज़ चार-पाँच घण्टे के लिए क़ानूनी शफ़ाख़ाने में जमा होते हैं। वहाँ एक को कराहट दूसरे को बहुत बुरी लगती है। कभी-कभी तो ये लोग क़ानूनी डाक्टर के सामने

खड़े-खड़े ख़ूब कराहते, चीखते और चिंघाड़ते हैं। मगर यह जीभों की लपालपी उसी वक्त तक रहती है जब तक व्रण में दर्द की शिद्दत रहती है, ज्यों ही दर्द कम हुआ त्यों ही फिर ग़ुर्राहट बन्द हो जाती है, और एक दूसरे के दर्द का शरीक बन जाता है। इन रोगियों में एक बात ख़ास होती है, ये लोग ख़ुद तो आपस में तड़क-भड़क करते ही रहते हैं, पर, दूसरे अच्छे-भले आदमियों को लड़ते-झगड़ते और सर पटकते देख बहुत ख़ुश होते हैं। इस विषैले व्रण के कारण अक्सर असत्य का ज्वर चढ़ आता है।

चिकित्सा—विकालत-व्रण के रोगी को महनताने के मधु में शुकराने का शर्बत मिला कर पिलाना चाहिये। 'मवक्किल-मरहम' का फाया रखने से तो बहुत जल्द फ़ायदा हो जाता है। साधारण व्रण के लिये 'पबलिक-पुलटिस' भी कारगर हो जाती है। देशोद्धार की ठेकेदारी मिल जाने पर भी यह रोग शान्त हो जाता है। जहाँ तक हो, लोगों को इनके इस छूत के रोग से दूर रहना चाहिए, क्योंकि यह उड़ कर लगने वाला मरज़ है।

'कविता-कण्डु' (खाज)

निदान—यह मरज़ भी बड़ा मूज़ी है, इसमें फँस कर रोगी घर का रहता है न घाट का। इस बीमारी में एक प्रकार की 'गुंगवाय'-सी हो जाती है। मरीज उठता-बैठता, सोता-जागता यहाँ तक कि न्हाने-खाने में भी 'गुन-गुन' करता रहता है। अपनी करतूत को कागज़ के टुकड़ों पर अङ्कित देख मुँह फाड़कर खिलखिला पड़ता है। इस रोग का जल्द इलाज करना चाहिये।

चिकित्सा—'कविता-कण्डु' के रोगी को सोने-चाँदी के पदक पीस-कर शोहरत के शहद के साथ चटाने चाहियें। कभी-कभी प्रशंसा-पत्रों की पर्पटी या पुरस्कारों की पुड़िया देने से भी

लाभ होता देखा गया है। उपाधि का अवलेह तो इस व्याधि को तुरन्त दूर कर देता है।

'व्याख्यान-व्याधि'

निदान—यह रोग बड़ा भयानक है, रोगी हर वक्त कुछ न कुछ बड़बड़ाया करता है। हुक्का, सिगरट, शराब, जुआ, चोरी आदि अपराधों को देख-सुन कर तो रोगी को एक दम भयंकर दौरा हो जाता है, जो लाख चिकित्सा करने पर भी शान्त नहीं होता। देश की दशा पर रोगी रोता-चिल्लाता है। सामाजिक दोषों को देखकर उसे बुरी तरह फुरफुरी आती है।

चिकित्सा—व्याख्यान-व्याधि के रोगी को 'गौरव-गिलोय' के काढ़े के साथ 'प्रशंसा-पिल्स' खिलानी चाहिये। अकर्मण्यता का अर्क तो इस रोग के लिए बहुत ही लाभदायक है। कभी-कभी 'सर्व-श्रेष्ठता' का स्वरस भी बहुत हितकारी साबित होता है। सब ओषधियाँ व्यर्थ सिद्ध होने पर, इस रोगी को '१४४' धारा की अमृत-धारा पिलानी चाहिये, बस, तुरन्त आराम हो जायगा।

'करमफोड़ कम्बख़्तराय'

(१)

पढ़ कर अँग्रेजी भरपूर,
भारतीयता कर दी दूर।
निज संस्कृति का मेंट निशान,
बन बैठा बेढब विद्वान्।

(२)

टूटी कमर झुक गये कंध,
हुआ तीन चौथाई अंध।
सूखा पेट सिकुड़ कर आँत,
पिचके गाल चमकते दाँत।

(३)

'कैमिस्ट्री[1]' सब डाली घोट,
'साइन्सों[2]' को गया सपोट।
पका न पाया रोटी-दाल,
क्रिया-कुशलता का यह हाल।

(४)

'अर्थ-शास्त्र' का हूँ आचार्य,
फिरूँ खोजता सेवा-कार्य।
बन जाऊँ दासों का दास,
दे-दे कोई रुपये पचास।

१—रसायन शास्त्र, २—विज्ञान।

(५)

'हिस्ट्री[1]' चाट भखा 'भूगोल',
पर, इनका कुछ मिला न मोल।
याद रही है बस यह बात—
"हिन्दी थे बहशी-बदज़ात"।

(६)

'रेखा', 'अङ्क', 'बीज' से विज्ञ,
कहलाऊँ प्रसिद्ध गणितज्ञ।
तो भी बनियाँ करे कमाल,
ठगे, न तोले पूरा माल।

(७)

पाने को पूँजी की 'पर्स[2]',
पढ़ डाली सारी 'कौमर्स[3]'।
'बुककीपिंग[4]' का बूँका मार,
हुआ न मेरा बेड़ा पार।

(८)

मुण्डी पढ़े करें आनन्द,
बैठे लिखें लगाय मसन्द।
पर, मैं हूँ बिलकुल बेकार,
आफ़िस मिले न साहूकार।

१—इतिहास, २—थैली, ३—वाणिज्य विद्या, ४—अंग्रेज़ी बही-खाता।

(९)

बना 'डाक्टर' आया जोश,
भर दूँगा सम्पति से कोश।
पर, 'पेशेंट[1]' न आवें पास,
कह-कह मुझको 'खब्तहवास'।

(१०)

'टीचर[2]' बना मनाया हर्ष,
ज्यों-त्यों काटा पहला वर्ष।
छात्र पढ़ाये करके टेक,
सौ में पास हुआ बस एक।

(११)

लेकर कर्ज़ किया व्यापार,
बेचे बिस्कुट, सेब, अनार।
किये न लोगों ने 'पेमेंट[3]',
घाटा सहा 'सेंट पर सेंट[4]'।

(१२)

अखबारों की उन्नति देख,
लिखने लगा लेख पर लेख।
छपा न कोई भी कम्बख़्त,
हैं 'एडीटर' ऐसे सख़्त।

१—रोगी, २—अध्यापक, ३—भुगतान, ४—सौ फ़ीसदी।

(१३)

'प्रीचर'-'प्रीस्ट[1]' बना मन मार,
काटे मास तीन या चार।
करता रहा 'गौड[2]'–गुणगान,
गाते-गाते थकी जबान।

(१४)

मिलता नहीं कहीं कुछ काम,
पास नहीं है एक छदाम।
ऐसे कुसमय में करतार,
सुन ले नीचे लिखी पुकार—

(१५)

"लीडर बनूँ, फिरूँ स्वच्छन्द,
कर दो द्वार दुखों के बन्द।
स्वार्थ और परमार्थ पसार,
करता रहूँ देश-उद्धार।"

१—व्याख्याता-पुरोहित, २—परमेश्वर।

बिरादरी-विभ्राट्

प्रथम अंक

(पहला दृश्य)

(स्थान—अन्धेर नगरी)

सुधारक-गाता है—

गिरों को गले लगावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे।
कर-कर भेदभाव की बातें, हाय! हुए हम दूर,
भाई-भाई में भी देखो, वैर भरा भरपूर,
उसे हम जल्द मिटावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे।

दुर-दुर छुआछूत के कारण प्यारा भारत देश,
रंक हो गया, भोग रहा है, हा! हा! कष्ट-कलेश,
सुनो, हम सुखी बनावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे।

जाति-पाँति के जटिल जाल ने फाँस लिये हम लोग,
भूल गये भ्रम-सागर में पड़, करने शुभ उद्योग,
न अब अनुदार कहावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे।

तोड़ 'गुरूडम' की गढ़िया को फोड़ घृणा-घट-खण्ड,
छोड़ छद्मता छलियापन की, दूर करें पाखण्ड,

प्रेम - पीयूष बहावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे

हे भगवान् ! अब भारत-मा का कर दो अभ्युत्थान,
हाँ, फिर हमें मिले भूतल पर पहला-सा सम्मान,
विजय का शंख बजावेंगे,
अछूतों को अपनावेंगे ।

दम्भदेव—अरे, यह कौन चीख रहा है, कलियुग में तरक़्क़ी का तराना किसे सूझा हैं, द्वारपाल ! जल्द इस रेंकुए को पकड़ कर लाओ ।

बकता है बार-बार यह कैसा गँवार है,
मक्कार 'धर्म-नाश' को समझा सुधार है ।
लाओ इसे घसीट अभी ठीक करूँ मैं,
लम्पट, लवार, लण्ठ का अज्ञान हरूँ मैं ।

द्वारपाल—"महाराज ! जो आज्ञा" (कहकर जाता है)

दम्भदेव—(स्वगत) आने दो इस अछूतों को उठाने और गिरों को गले लगाने वाले को ! सारी अक्ल ठिकाने कर दी जायगी ! सब बातें बनाना भूल जायगा !

द्वारपाल—महाराज ! वह गाने वाला आगया है ।

दम्भदेव—फ़ौरन उस रेंकुए को हमारे हुज़ूर में हाज़िर करो ।

द्वारपाल—जो हुक्म—

सुधारक—(दम्भदेव से) 'वन्देमातरम्' महोदय, कहिये, कैसे याद फ़रमाया ?

दम्भदेव—तुम गुस्ताख आदमी ! अभी क्या बक रहे थे ? जानते नहीं हो कि मैं दम्भदेव हूँ—मेरे इधर-उधर

इस तरह का बेहूदा बकवाद 'गुनाहेअज़ीम' समझा जाता है। मुआफ़ी माँगो और आगे से ऐसी अण्ड-बण्ड बातें न बकने का अहद करो।

सुधारक—नहीं साहब, यह रोशनी का ज़माना है, हमें जो कुछ कहना है, ज़रूर कहेंगे। सचाई से आप किसी को नहीं रोक सकते। माना कि आप समर्थ और स्वामी हैं, पर, हम स्वतन्त्र मत प्रकट करना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते हैं।

दम्भदेव—अरे, कोई है जो इस मुंहज़ोर का मुँह सीधा करे। (ज़ोर से चिल्लाता है) "उद्दण्डसिंह !"

उद्दण्डसिंह—महाराज ! क्या आज्ञा है ?

दम्भदेव—(सुधारक की ओर इशारा करके) इस गुस्ताख़ को पकड़ कर ले जाओ, और हवालात में बन्द कर दो। बड़ा नामाक़ूल है, भङ्गी और चमारों को उठाना चाहता है—उन्हें गले लगाने की बात बकता है।

उद्दण्डसिंह—बहुत अच्छा, सरकार ! (धक्का देकर सुधारक की गरदन पकड़ता है।)

सुधारक—याद रक्खो हम कच्चे खिलाड़ी नहीं हैं जो तुम्हारी धमकियों से अपना उसूल छोड़ दें—'कुम्हड़बतियाँ' नहीं हैं जो 'तर्जनी' देखकर मुरझा जायें। अरे, यह शरीर बड़ी-बड़ी आफ़तों का इस्तक़बाल कर चुका है; सैकड़ों संकटों का केन्द्र बन चुका है, पर, उफ़ नहीं की—

'सिदाक़त के लिए गर जान जाती हो तो जाने दें,
मुसीबत पर मुसीबत सर पै आती हों तो आने दें।'

दम्भदेव—ले जाओ ! ले जाओ ! इस सचाई के सिरकटे को,

क़ैदखाने में, ले जाओ ! वहाँ पड़ा-पड़ा सड़ता रहेगा, या इसकी अक़्ल ठिकाने आ जायगी।

सुधारक—दम्भदेव ! आप क्या कहते हैं ? भला इन गीदड़ भभकियों से कुछ हो सकता है ? देखो—"यह वह नशा नहीं जिसे तुरशी उतार दे।"

दम्भदेव—अरे उद्दण्ड ! इसे कालकोठरी में क्यों नहीं ले जाता ?

उद्दण्ड—अन्नदाता ! दीवान दुर्जनमल आ रहे हैं, अभी जाता हूँ।

(दीवानजी का प्रवेश)

दुर्जनमल—(दम्भदेव को प्रणाम करके) इस बँधुए से क्या गुस्ताख़ी बन गई, महाराज ! जो श्रीमान् का मुखमंडल कुछ क्रुद्ध-सा दिखाई देता है।

दम्भदेव—यह गँवार सुधारकों का सरदार बनता है, चमारों, और भंगियों को गले लगाने की बात बकता है।

दुर्जनमल—शिव ! शिव ! बड़ा बज़्ज़ात है, महाराज !

दम्भदेव—और शोख़ी इस क़दर कि अपनी ग़लती मानकर माफ़ी तक नहीं माँगता, बल्कि अपनी नाजायज़ हरकत पर ज़िद करता है।

दुर्जनमल—हरे कृष्ण ! वासुदेव ! इतनी ढिठाई और ऐसी निर्लज्जता ! तो क्या इसे कालकोठरी में भेज रहे हैं, हुजूर !

दम्भदेव—हाँ—

दुर्जनमल—अन्नदाता की जो आज्ञा है, वही ठीक है, पर, मेरी सम्मति में, तो, इसका जेल जाना ठीक न होगा। वहां यह खायगा और गुर्रायगा,-दूसरे क़ैदियों को भी भड़कायगा। बहुत सख़्ती की जायगी तो 'भूख-हड़ताल' कर देगा।

दम्भदेव—फिर क्या किया जाय ?

दुर्जनमल—महाराज, इस बेवकूफ़ ने "पंच-पुराण" द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिलडिंग की बुनियाद हिलाने की कुचेष्टा की है, अतएव यह क़ौमी कौंसिल के 'वर्ण-विपर्यय' एक़्ट की ७४९ वीं धारा के अन्तर्गत आता है।

दम्भदेव—हाँ-हाँ यह तो बहुत ही संगीन जुर्म है। इसके लिए तो मामला पंचराज के सुपुर्द करना पड़ेगा।

दीवान—महाराज की जय बनी रहे, यही मेरा मतलब है।

दम्भदेव—अच्छा, लाल लिफ़ाफ़ा लिखो, और मुक़द्दमे को फ़ैसले के लिए पंचराज की पंचायत में भेज दो।

(भेजा जाता है)

दूसरा दृश्य

(स्थान पंचपुरी)

(पंचराज का दरबार)

जाति-पाँति का ही आधार,
हैं सारी उन्नति का सार।
छूत-छात का छोड़ घमण्ड,
बकते हैं, जो-जो उद्दण्ड।
सब को पकड़ जेल में ठेल,
देखो, खूब निकालो तेल।

पंचराज—(दहाड़ कर) देखो, कलजुग में कोई धर्म-भ्रष्टता के गीत न गाने पावे, जाति-पाँति का जितना विस्तार हो सके करो, सम्प्रदायवाद को इतना फैलाओ कि एक-एक घर में छह-छह मतवाले दिखाई देने लगें। ख़बरदार !

अछूतों का कोई नाम भी न ले, अगर ले भी तो उसी वक्त हलक़ में 'फ़नायल' डाल कर तुरन्त जीभ साफ़ की जाय।

चमारों को चढ़ाता है, भंगी को भिड़ाता है,
उन्नति के अखाड़े में, वह टाँग अड़ाता है।

मन्त्री—महाराज ! यह घोषणा सब को सुना दी गई। श्रीमान् की कृपा से ख़ूब बिरादरीवाद फैल रहा है, छूत-छात ने बड़ा आनन्द कर रक्खा है, मादकता की मृदुलता से सारा संसार मुग्ध हो रहा है।

पंचराज—ह ह ह ह ! हाँ, तो हमारा आतङ्क अच्छा काम कर रहा है।

मन्त्री—महाराज- बहुत ज्यादह।

(द्वारपाल का प्रवेश)

द्वारपाल—(मन्त्रीजी से) अन्नदाता ! यह लाल लिफ़ाफ़ा है और बाहर पाँच सिपाहियों समेत एक आसामी भी मौजूद है।

मन्त्री—(लिफ़ाफ़ा पढ़कर हर्ष और आतङ्क से) सब को जल्द लाओ। (सब आते हैं)।

सिपाही—(सलाम करके) हुज़ूर ! इस आसामी ने रास्ते में हमारा नाक में दम कर दिया, कान खा लिये। 'सुधार-सुधार' ही चिल्लाता आ रहा है।

मन्त्री—अच्छा, चुप रहो—हम सब इन्तज़ाम कर देंगे। (पंच-राज को सम्बोधन करके) महाराज ! यह बँधुआ, श्रीमान् दम्भदेव ने, वर्णविपर्यय ऐक्ट की ७४९ धारा के अनुसार इस दरबार में फ़ैसले के लिये भेजा है। इसने अछूतों को उठाने या गिरों को गले लगाने की परोक्ष या प्रत्यक्ष रूप से चेष्टा की है।

पंचराज—क्यों बे बेहूदे तू क्या बकता था ?

सुधारक—मैं नेकनीयती से लोगों का सुधार करता रहता हूँ, वैसे ही गीत भी गाता हूँ। आजकल अछूतों के उठाने का आन्दोलन जारी है। बस, इसी बात पर मुझे पकड़ लिया गया है!

पंचराज—हाँ ठीक है! "इसी बात पर!"—मानो, यह कुछ है ही नहीं!

सुधारक—साहब, मैंने चौरी नहीं की, जारी नहीं की, डाका नहीं डाला, और भी कोई बुरा काम नहीं किया—फिर.........

पंचराज—(बड़े जोर से हँस कर) ह ह ह ह! (मन्त्री की ओर मुँह करके) देखा, कैसा बेवक़ूफ़ है! अपने क़सूर को चोरी, जारी, डाका वग़ैरह से भी कम समझता है।

मन्त्री—हाँ, हुज़ूर! देखिये न! मेरी राय में तो अब चपरपंचजी को बुला लिया जाय, जिससे वह इस आसामी से जिरह करलें और फ़ैसला सुना दिया जाय।

पंचराज—हाँ, ठीक है, बुलाओ।

(चपरपंच का प्रवेश)

चपरपंच—(पंचराज से) महाराज की जय हो! हाज़िर हूँ, हुज़ूर!

पंचराज—अच्छा, चपरपंच, इस आसामी से हमारे सामने जिरह करो।

चपरपंच—(जो आज्ञा कहकर आसामी (सुधारक) की ओर मुख़ातिब हुए और हाथ में 'मिसल' लेकर पूछने लगे) हाँ, तो, तुनने पंच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी बिल्डिंग की बुनियाद हिलाने की चेष्टा की थी!

सुधारक—मैंने "अछूतों को अपनावेंगे, गिरों को गले लगावेंगे" सिर्फ़ यह गीत गाया था।

चपरपंच—हाँ—वही बात, हमने सब बातें मिसल में पढ़ ली हैं। अच्छा, तो तुम्हारा अछूतों को उठाने से क्या मतलब है ?

सुधारक—यही कि उनको पढ़ाया-लिखाया जाय, सुनागरिक बनाया जाय, उनसे घृणा दूर की जाय।

चपरपंच—इस तरह करने से तो बिरादरी बरबाद हो जायगी, भंगियों से घृणा न की जायगी, तो सब सरभङ्गी बन जायँगे।

सुधारक—वह भी तो हिन्दुओं के भाई हैं, चोटी रखते हैं, राम और कृष्ण को मानते हैं, अपने को हिन्दू कहते हैं। घृणा की क्या बात है, अब भी तो किसी न किसी रूप में लोग उनको छूते ही हैं, और उनके हाथ का खाते भी हैं।

चपरपंच—यह और बात है।

सुधारक—मैं इन लोगों से मदिरा छुड़ाता हूँ, उन्हें और भी बुरे कामों से रोकता हूँ। आप देखते हैं कि, सहस्रों शिखा-सूत्रधारी छिप-छिप कर शराब पीते हैं—

चपरपंच—यह और बात है।

सुधारक—रात-दिन बिरादरी में गुप्त रूप से कुकर्म हो रहे हैं, पर कोई कुछ नहीं कहता।

चपरपंच—यह और बात है।

सुधारक—बड़े-बड़े धोती लटक्कू लोग चमारों का गुड़ गटकते, रेबड़ी कुटकते, बताशे सटकते और न जाने किस-किस के हाथ बने शरवत डकार जाते हैं, पर उनसे कोई कुछ नहीं कहता।

चपरपंच—यह और बात है—

सुधारक—बेटी बेचने वालों की संख्या बढ़ती जाती है, बुड्ढ़ों के विवाह हो रहे हैं, विधवा बिलबिला रही हैं, पर, इस ओर दम्भदेव का ध्यान नहीं गया।

चपरपंच—यह और बात है—अच्छा अब चुप रहो। तुम्हारी बातें सुन लीं, तुम बड़े मुँहज़ोर हो, कोई ढङ्ग की बात नहीं कहते।

पंचराज—अच्छा, मन्त्रीजी, अब इसका बकवाद बन्द करो, मैं बहुत जल्द सज़ा तजवीज़ करता हूँ।

मन्त्री—बहुत अच्छा, हजूर! 'चुप रह रे, रेंकुए।'

पंचराज—हाँ, तो, इसने पंच-पुराण द्वारा संस्थापित बिरादरी-बिल्डिंग की बुनियाद हिलाने की प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से चेष्टा की है—उस बिरादरी की जो सैकड़ों-हज़ारों बरसों से बड़े-बड़े पापकाण्डों को देखती हुई भी हमारी ख़ातिर जिन्दा है—उस बिरादरी की जिसने अपने अस्तित्व के आगे किसी पाप-पुण्य का कभी विचार नहीं किया—उस बिरादरी की जो बड़े-बड़े आचारहीनों को भी छाती से लगाकर सदैव उन्हें आश्रय देती रहती है—उस बिरादरी को जिसमें पतित से पतित भी मूंछों पर ताव देकर, साम्यवाद का उपदेश कर सकता है—उस बिरादरी की जिसने विधवाओं की बिलबिलाहट देख कर भी उनके विवाह की व्यवस्था देने का अपराध नहीं किया—उस बिरादरी की जिसने ज़रा-ज़रा सी बातों पर लाखों लोगों को बाहर कर अपना औचित्य पालन किया! हाय! हाय! ऐसी परम पावन कल्पलता को यह सुधारक-सुग्गा बात की बात में उखाड़ फेंकना

चाहता है ! ग़ज़ब ! अच्छा, मंत्री इसे पाँच साल के लिये जेल में ठेल दिया जाय।

मन्त्री—हुज़ूर ! यह तो बहुत थोड़ी सज़ा है। एक-दो, दस-पाँच आदमियों के क़त्ल करने की कोशिश करने वालों को इतने दिन का दंड दिया जाता है, पर, इसने तो 'पंच-पुराण' द्वारा प्रतिष्ठित सारी बिरादरी को ही उलट देने का मन्सूबा बाँध लिया था, इससे लाखों लोगों की जान का नहीं ईमान का ख़तरा था।

पंचराज—(आश्चर्य से) बेशक ! हमारी सरकार 'दीन-ओ-ईमान' की हिफ़ाज़त के लिए तो क़ायम ही है। अच्छा, तुम्हीं बताओ क़ातिल से भी ज़्यादा क़सूरवार आततायी को क्या सज़ा दी जाय ?

मन्त्री—महाराज ! मेरी राय में तो इसे बिरादरी से बाहर कर देना चाहिये। इससे उसके महाभयङ्कर प्रयत्न का प्रशमन हो जायगा, और हुज़ूर के क़ौमी कोड में भी यही "कैपिटल पनिशमैंट" है।

पंचराज—अच्छा ! अच्छा !—मंज़ूर ! रेंकुआ विवाह-शादी में न बुलाया जाय, बिरादरी से अलग, हुक़्क़ा-पानी बन्द, न्योता न दिया जाय और किसी तरह का व्यवहार इसके साथ न रखा जाय ! मन्त्रीजी हमारी इस आज्ञा को 'हुल्लड़-हैरल्ड' में छपवा कर 'मिसल' दम्भदेव के दरबार में भेज दो, और अब इस अभियोग का अन्त करो।

(परदा गिरता है)

बुढ़ऊ का ब्याह

प्रथम अंक

पहला दृश्य

स्थान—पतितपुरा

लम्पटलाल—सच समझना भाई, दुर्मतिदेव ! बड़ा बुरा समय आ गया ! चारों ओर से क़र्ज़ ने मुझे कस लिया है, तक़ाज़ों के मारे नाक में दम है, शर्म से गड़ा जाता हूँ, और आफ़तों से मरा जाता हूँ।

दुर्मतिदेव—हाँ सेठजी, इसमें क्या सन्देह है, आपका घराना कोई मामूली था क्या ? इस चौखट पर ऐसे-ऐसे काम हो चुके हैं कि जिन्हें दुनिया याद करती रहेगी। लेना-देना तो लगा ही रहता है। परमात्मा की कृपा से आप शीघ्र ही उऋण हो जाएँगे और फिर सभी तरह आनन्द होंगे।

लम्पटलाल—क्या बताऊँ महाराज ! बड़ी मुसीबत है। लड़के छोटे-छोटे हैं। अब लड़की भी विवाह योग्य हो गई, उसकी फ़िकर अलग सताये डालती है। आख़िर विवाह-शादी के लिये भी तो रुपयों की आवश्यकता होगी।

दुर्मतिदेव—सब भगवान् भला करेगा। आपके लड़के बड़े हुए जाते हैं, जायदाद न रही, न सही। आफ़त आने पर रिश्तेदारों से सहायता लेकर काम चला लेते हैं। आप भी ऐसा ही कीजिए, सारा कर्ज़ चुक जायगा।

लम्पटलाल—आपद्धर्म में सब कुछ करना पड़ता है। मगर मेरा

तो ऐसा कोई रिश्तेदार है भी नहीं जो इस आड़े वक्त में सहायता दे सके ।

दुर्मतिदेव—लड़कों के सम्बन्ध अच्छी जगह करलो, खूब दहेज़ आयगा और काम बन जायगा ।

लम्पटलाल—महाराज, आप भी कैसी बातें करते हैं । भला एक कंगाल के घर कौन अपनी लड़की ब्याह देगा ! सो भी वैश्य जाति में, और वह भी हमारे यहाँ ?

दुर्मतिदेव—"सो भी वैश्य जाति में" यह क्या कहा ? क्या वनियों में विवाह नहीं होते ?

लम्पटलाल—होते क्यों नहीं ? पर, हम जैसे ग़रीब क़र्ज़दारों के यहाँ नहीं, जिनके यहाँ न गहना है न कपड़ा ।

दुर्मतिदेव—नहीं, सेठजी ! तुम्हारे लड़के तो बारह-बारह चौदह-चौदह बरस के ही हैं, पर, हमने तो हिन्दू जाति में बूढ़ों तक के विवाह होते देखे हैं ।

लम्पटलाल—भाई वे बेटी वाले को रुपये गिनाते और शादी कराते हैं । मेरे पास धन होता तो रोना ही क्या था । फिर तो बीसियों नाइयों और पुरोहितों के टट्टुए मेरे घर के घेरे में हिनहिनाते नज़र आते ।

दुर्मतिदेव—अच्छा, मैं समझ गया, ठीक है ! तुम और सब छोड़ कर पहले चतुर चम्पा का विवाह करो । फिर, इस हवेली में रुपयों की कमी न रहेगी । बस और सब विचार त्याग दो ।

लम्पटलाल—हे भगवान्, ऐसा कौन अमीर अन्धा होगा जो इस टूटी झोंपड़ी में आकर अपना मौर उतर वायेगा और मुझे मालामाल बनायेगा ।

दुर्मतिदेव—इसका प्रबन्ध मैं करा दूँगा आप निश्चिन्त रहिये। रात अधिक हुई, अब सो जाइये।

लम्पटलाल—अच्छी बात है।

(दोनों जाते हैं)

दूसरा दृश्य

स्थान—निकृष्ट नगरी

द्रव्यदास—(हाथ में चिट्ठी लेकर) हाय, ग़ज़ब हो गया, संकट का सागर उमड़ पड़ा, आसमान से अङ्गारे बरसने लगे, धरती काँप उठी ! ६५ साल की उमर में सातवाँ विवाह किया था सो 'वह' भी मर गई ! भगवान् ! अब मैं किसका होकर रहूँगा और कौन का पति कहलाऊँगा ? हाय ! मेरा सत्यानाश हो गया ! अरे—हाय ! मैं किसी काम का न रहा रे—राम—अब ये धन-दौलत किस काम आवेगी—हे राम !!!

(रोता है)—

मोधू मुनीम—अजी, सेठजी ! इतने क्यों घबराते हो, बिगड़ा घर फिर बस जायगा, धीरज से काम लो, सब्र रक्खो। ऐसो भी क्या व्याकुलता !

भोंदूभक्त—लाला द्रव्यदास, संसार की गति ऐसी ही है। पुरानी पैर की जूती जाती है और नई आती है। भरे रहें आपके भण्डार और चहिए ख़र्च करने को रुपया। बस मामला ज्यों का त्यों हो जायगा।

निदुरिया नाई—सेठजी, अहन रोइविन का का काम। हमारे महल्लामां एक पण्डित दुर्मतिदेव रहन करिन तौन सब काम करि दीन। कहौ तौन बोलाय लाईन।

मोधू मुनीम—चुप रह रे निदुरिया। जिस समय सेठानी बीमार थीं और रिज़र्वगाड़ी में सोलन सेनोटोरियम भेजी गई थीं, उसी समय हमने अगली आपत्ति सोच कर सब काम ठीक कर लिया था।

भोंदूभक्त—और क्या! मुनीमजी बड़े चतुर-चूड़ामणि हैं। इन्हें अक्ल के पुतले और बुद्धि के विशारद कहना चाहिए।

द्रव्यदास—(आँसू पोंछ कर) अच्छा तो कोई है लड़की? मुनीमजी जल्द उद्योग करो, रुपये की चिन्ता मत करना, जो चाहो सो खर्च करना।

मोधू मुनीम—हाँ-हाँ सेठजी, आप धीरज धरिये और सेठानीजी के क्रिया-करम से फ़ारिग़ हो लीजिए—सब काम हो जायँगे। जाइये, रोटी खाइये, और पानी पीजिये। ओरे निदुरिया नाई—सेठजी को न्हिलाने के लिए ताजी पानी ला और पूजा का सामान रख।

निदुरिया—बहुत अच्छा, मुनीमजी!

(सब जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—मुनीमजी का मकान

[निकृष्टनगरी]

अनजान आदमी—(ज़ोर से पुकारता है) मोधू मुनीम मकान में हैं क्या—मोधू मुनीम?

मोधू मुनीम—आया—कहिए क्या बात है? आपका नाम?

अनजान आदमी—मेरा नाम पं० दुर्मतिदेव ज्ञानसागर है।

मोधू मुनीम—प्रणाम महाराज! आपकी तो बड़ी प्रतीक्षा थी।

निठुरिया को आपके पास कई बार भेजा था पर आप मकान पर मिले नहीं।

दुर्मतिदेव—हाँ, मैं पतितपुरा में पण्डिताई करने गया था। वहाँ से आज सबेरे ही आया हूँ। सुना है, दाता द्रव्यदास की इस पत्नी का भी देहान्त हो गया!

मोघू मुनीम—हाँ! महाराज, बड़े रंज की बात है, सेठजी बहुत दुखी हैं।

दुर्मतिदेव—रंज और दुःख किस बात का! मुनीमजी! वह सेठानी अपनी जान से गई, अब दूसरी दुलहिन उन्हें मिल जायगी। कहो हैं लाख की चौथाई गिनने को तैयार?

मोघू मुनीम—बड़ी खुशी से—रुपये की क्या कमी! और फिर इस काम के लिए! मामला पक्का कीजिए और आप भी अपनी दक्षिणा लीजिए।

दुर्मतिदेव—सब ठीक-ठाक है। पतितपुरा के लम्पटलाल की लड़की के सम्बन्ध की बातचीत हो जायँगी। ढाई हज़ार मुझे देने पड़ेंगे। बोलो क्या कहते हो?

मोघू मुनीम—मंज़ूर! मंज़ूर! चलो पतितपुरा, दिखाओ लड़की और कराओ उसके बाप से बातें।

दुर्मतिदेव—चलिये, और कुछ रुपये भी साथ ले लीजिये।

मोघू मुनीम—ज़रा ठहरिये—हाँ चलिये-चलिये, निठुरिया नाई का इन्तज़ार था वह भी आ गया। चलबे जल्दी चल! नाक पर दीया जलाकर घर से निकला है।

चौथा दृश्य

स्थान—निकृष्ट नगरी

(सेठजी की हवेली)

द्रव्यदास—कहिये मुनीम मोधूमलजी, कुछ उद्योग किया? भोंदूमल तो कहते थे कि मुनीमजी परसों पतितपुरा गये हैं, सो वहाँ कामयाबी हुई या यों ही चले आये ?

मोधू मुनीम—सेठजी, सब काम ठीक है, इन पं० दुर्मतिदेवजी ने बड़ा उद्योग किया है। लड़की देख ली गई है और उसके बाप से बातचीत भी हो गई हैं। मामला बीस हज़ार पर ठहरता है—कहिए क्या कहते हैं ?

द्रव्यदास—अरे—उसकी उम्र क्या है ? कुछ खूबसूरत भी है या यों ही—रुपये-पैसे की कोई चिन्ता मत करो, बीस हज़ार ही सही पर शादी तो इसी शरदपूनों को हो जायगी न।

दुर्मतिदेव—नहीं सेठजी, शरद पूनों का विवाह, जो है ते नहीं बने हैगा। कुछ दिन पीछे देवठान पर हो जायगा।

मोधू मुनीम—देवठान ही सही।

द्रव्यदास—बहुत लम्बी बात चली गई—देवठान के अब से तीन महीने हैं—पर ख़ैर—जब ही सही।

भोंदूभक्त—महाराज दुर्मतिदेवजी, अब की बार आप ऐसे घड़ी-मुहूर्त विचारें कि सेठजी को यह विवाह फूलना-फलना हो।

मोधू मुनीम—हाँ, पण्डितजी, यही मेरी प्रार्थना है।

दुर्मतिदेव—भगवान् ने चाहा तो ऐसा ही होगा।

मोधू मुनीम—सेठजी क्या आज्ञा है ? आप कहें तो दुर्मतिदेव के साथ निदुखिया नाई को आधे रुपये लेकर पतितपुरा भेज दें।

भोंदू भक्त—और क्या? मामला पक्का हो जाय और नेग-टेहले शुरू होने लगें।

द्रव्यदास—हाँ-हाँ मुनीमजी, कह तो दिया। रुपये की कोई बात नहीं, विवाह जल्दी होना चाहिये।

मोधूमल—अच्छी बात है, भगवान् की दया से विवाह जल्द होगा। पण्डितजी, आप निदुरिया नाई को लेकर पतितपुरा जायँ और लाला लम्पटलाल से सब बातें तय कर आवें।

दुर्मतिदेव—(कान में धीरे से) मामला तो सब ठीक ही है। सगाई-लगुन सब साथ-साथ आवेंगी। इन बीस हज़ार में से ढाई हज़ार मैं अपने घर रख जाऊँगा।

मोधूमल—(कान में) ढाई हज़ार मैं अपने यहाँ रक्खे लेता हूँ। (कान में) सुनरे-निदुरिया तू भी कुछ रुपये अपने बाल-बच्चों को देता जा। लम्पटलाल को तो सिर्फ़ १५ हज़ार देने हैं न। पंजा अब दे आओ और दहला विवाह के वक़्त (प्रकट) हाँ तो समझ गये न आप। मैंने जो कान में कही हैं वे सब बातें पहले ही तय कर लेना जिससे विवाह के समय गड़बड़ी न हो।

दुर्मतिदेव और निदुरिया—हाँ-हाँ साहब, सब बातें लो, सब।

(जाते हैं)

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—पतिततपुरा का बाजार

(बारात की अगवानी)

मोधूमल—अरे ढोल-ताशे वालो! ज़रा-ज़ोर से बाजे बजाओ। क्या मुरदे की तरह हाथ चलाते हो! पीछे हटो, आगे अङ्गरेज़ी बाजे वाले आवेंगे।

भोंदूमल—अरे डण्डे वालो! इधर आओ, सेठजी की पालकी के पास रहो। देखा, ससुर फुलवाड़ी वाले कैसे इधर-उधर चल रहे हैं—अरे इधर आओ, ज़रा क़तार बाँध कर चलो।

निदुरिया नाई——मुनीमजी—जे आतिशबाज़ ससुर पुरुआ-पटाखे और गोलान कूँ ऐसे धड़ाके ते छुड़ाय रहिन के सेठजी उछर-उछर पड़िन—डरप रहिन।

मोधू मुनीम—अबे चल-चल, सेठजी की पालकी का पीछा न छोड़। जा उनके पास।

द्रव्यदास—(पालकी में से) अरे मोधू-मोधू, देखना, कहीं किसी बराती को तकलीफ़ न होने पाये। राय बहादुर मुक्काराम और सेठ चक्कूचरन की ख़ूब ख़ातिर रखना और उन नाचने-गाने वाली औरतों को भी न भूल जाना। भड़कीले भाँड़ आये कि नहीं?

मोधू और भोंदू—सब आ गये! सब ठीक है, आप चिन्ता न करें।

द्रव्यदास—हाँ, तुम जानो तुम्हारा काम। देखना, किसी को तकलीफ़ न हो, मैं तो यहाँ दूल्हा बना बैठा हूँ।

दाताराम—(हाथी पर से) मुनीमजी! मुनीमजी! कम सुनते हो क्या? अरे, बखेर के लिए कुछ थैलियाँ और भिजवाओ, पहली सब समाप्त हो गईं।

मुनीमजी—अच्छा, अच्छा अभी आती हैं, घबराओ मत, यह लो वे आ गये थैलीदार, अब खूब बखेर करो।

स्वागतसिंह—बस-बस, बाजे वालो यहीं रुक जाओ, बरात इसी मकान में ठहरेगी। आगे कहाँ जा रहे हो?

(सब लोग स्वागतसिंह के बताये जनवासे में ठहर जाते हैं)

छठा दृश्य

स्थान—पतितपुरा का-नीतिनिवास महल्ला

(समय ९ बजे रात्रि)

धर्मवती—(अपने पति धर्मदेव से) आज तो लाला लम्पटलाल के यहाँ बड़ी भारी बरात आई, बुड्ढे वर ने खूब ख़ाक उड़ाई, बड़े बाजे बजे और धड़ाके की धूमधाम हुई। शर्म नहीं रही इस पापी को ! राम ! राम ! रुपये गिन कर बुड्ढे को बेटी ब्याह दी ! भाड़ में झोंक दी ! न जाने इस नीच का कैसे भला होगा ?

धर्मदेव—अरे इस लम्पट पापी का नाम मत लो ! जिस समय उस बुड्ढे खुर्रांट वरना को बारात के साथ पालकी में बैठे देखा, तो लोग बुरी तरह ऊकने-थूकने लगे। लानतों के मारे उसका नाक में दम कर दिया।

धर्मवती—अजी, उस बेजोड़ बूढ़े बरना को मैंने भी देखा था, और भी सैकड़ों स्त्रियाँ इस अघटित घटना को देख रही थीं। लम्पट ने बड़ा पाप कमाया ! कंचन-सी कन्या हौलू 'हौआ' के हवाले कर दी ! राम ! राम ! कहाँ चतुर चम्पा और कहाँ ये बूढ़ा बन्दर !

सुखदा—(धर्मवती की बहन) अरी, जीजी ! जब वह बूढ़ा बन्दर पालकी में बैठा, पोपला मुँह चलाता और चुन्धी आँखें चमकाता था तब तो बड़ी ही हँसी आती थी। हाय ! हाय ! लम्पटलाल ने बड़ी ही नीचता की। ऐसे नराधम न जाने क्यों भू-भार बढ़ाने को आते हैं।

धर्मदेव—इस बूढ़े बन्दर को कुछ न.........अरे रामसुख (छोटा भाई) यह शोर काहे का हुआ ? हल्ला क्यों मचा ? दौड़,

जल्दी पता लगाकर ला क्या बात है ?

दीनदयालु—(धर्मदेव का मित्र घबराता हुआ आता है) लालाजी ग़ज़ब हो गया ! लम्पटलाल की लड़की चम्पा ने साड़ी में आग लगा ली। उसकी मा कुएँ में गिरनें को तैयार है।

धर्मदेव—(आश्चर्य से) क्यों, क्या बात हुई ?

दीनदयालु—अजी, उस बूढ़े वर को देख कर सारे पुर-परिवार में शोक छा गया। चम्पा और उसकी मा के संकट का तो पारावार ही न रहा।

धर्मदेव—आख़िर बात क्या हुई ?

दीनदयालु—बात क्या हुई ? रुपयों पर धामकधच्चा हो जाने से फेरे पड़ने में विलम्ब हुआ, लड़ाई की नौवत आ पहुँची ! चम्पा दुखी होने लगी और वह किसी वहाने से दूसरे कमरे में चली गई। वहाँ उसने अपने ऊपर मिट्टी का तेल उड़ेल कर कपड़ों में आग लगा ली और जल मरी ! इस दुर्घटना से नगर और घर में कुहराम मच रहा है। शोक के शौले फूट निकले हैं ?

धर्मदेव—हाय ! उस कन्या को अपने उद्धार का अन्तिम उपाय बलिदान ही सूझा ! वह लम्पटलाल की लम्पटता पर लात मार कर स्वर्गगामिनी हुई, परमात्मा ऐसी विशुद्ध बालिका को अवश्य सद्गति देगा। वह तो बड़ी पुण्यशीला········।

रामसुख—लीजिये साहब ! सारा मामला पलट गया ! विवाह के स्थान पर चम्पा की अरथी कसी जा रही है। लम्पटलाल बेटी को नहीं रुपयों के लिए रो रहे हैं। "हाय-

हाय !" मची हुई है। घर वालों को तो इस बुड्ढे बिलौटे के विकराल रूप तथा लेने-देने की कुछ खबर ही न थी। उन्हें तो १६ वर्ष का वर बताया गया था। चम्पा भी इसी बात को सुनती रहती थी। यह तो सब लम्पट लाला की लम्पटता और दुर्मति बाह्मन की दुर्मति का कुफल निकला !

धर्मदेव—चलो, लम्पट के मकान पर चलें और वहाँ सब घटना देखें।

(सब गये परन्तु घर में "हाहाकार" होता देख उल्टे पैरों चले आये। इस समय तक बारात वापस हो गई थी।)

सातवाँ दृश्य

स्थान—धर्मशाला

(पतितपुरा और निकृष्टनगरी के पचासों पंच बैठे पंचायत कर रहे हैं)

देवीदत्त—आशा है, आप लोग लम्पटलाल और द्रव्यदास सम्बंधी दुर्घटना का हाल ज्ञात कर चुके होंगे। चम्पा के बलिदान की चर्चा भी सुन ली होगी।

देवप्रकाश—अच्छी तरह सुन चुके हैं, अब आप चम्पा की मृत्यु-वार्ता का वर्णन कर पंचों को न रुलाइये, उन नीच नराधमों का नाम न लीजिये, हमारे कान पके जाते हैं और कलेजा काँप रहा है।

सत्यदेव—अब तो इस पंचायत को यह फ़ैसला देना चाहिए कि इस दुर्घटना से जिन-जिन पापियों का सम्बन्ध है और जिन के कारण यह हुई है, उनका सदा के लिए बहिष्कार किया जाय, उनकी शक्ल देखने तक में पाप समझा

जाय। उनसे सब प्रकार के सम्बन्ध-विच्छेद कर दिये जायँ। सम्भव हो तो इन नीचों के पुतले बना-बना कर जलाये जायं, इन्हें नीचातिनीच समझा जाय। कहिए है मंज़ूर ?

पंचायत—"मंज़ूर, मंज़ूर, मंज़ूर" ऐसे पापियों का यही हाल होना चाहिये।

देवीदत्त—नहीं साहब, इतने से काम न चलेगा। आगे ऐसी दुर्घटनाएँ न हों इसके लिए भी कुछ प्रबन्ध सोचना चाहिए।

वीरभद्र—प्रबन्ध क्या ? इस समय यहाँ सब ज़ातियों से सम्बन्ध रखने वाले, पचास गाँव के हज़ारों आदमी बैठे हैं। अगर सब की राय हो तो इस समय यह तय किया जाय कि भविष्य में बाल-विवाह तथा वृद्ध-विवाह करने वालों का कोई साथ न दे और ऐसी शादियों में शामिल होना पाप समझा जाय।

चन्द्रसेन—नहीं साहब, इतना और कीजिये कि अगर यह पता लग जाय कि किसी विवाह के लिये रुपये लिये गये हैं तो उसमें कोई शरीक न हो।

वीरभद्र—हाँ, यह बात भी मानने लायक़ है, कहिये साहब, आप लोग क्या कहते हैं। है प्रस्ताव स्वीकार ?

सब लोग—हाथ उठाकर—"मंजूर, मँजूर, मंजूर।"

देवीदत्त—अगर इन पचास गाँवों में से कोई आदमी ऐसी शादियों में शामिल हुआ तो उस पर ५००) जुरमाना किया जायगा।

सब लोग—"ज़रूर किया जाय, मंज़ूर।"

चन्द्रसेन—देखिये, जोश में नहीं होश में आकर हाथ उठाइये, कहीं पीछे प्रतिज्ञा-भ्रष्ट न होना पड़े।

सब लोग—नहीं साहब, खूब समझ लिया है, ऐसे क्रूरकाण्ड देख कर कलेजा काँपता है, भला कौन पापी होगा जो इस प्रकार के नीच कर्मों का साथ दे।

नित्यानन्द—सुनिए साहब, सुनिए, देखिए यह दीनदयालुजी क्या कहते हैं। हाँ, साहब, ज़रा ज़ोर से फ़रमाइये जिससे सब सुनें।

दीनदयालु—आज भीमपुरा की कचहरी में बड़ा विचित्र दृश्य था। लम्पटलाल और द्रव्यदास दोनों गिरफ़्तार हो गये, पुलिस ने उन्हें पकड़ कर हवालात में भेज दिया। यह सब चम्पा के बलिदान के कारण ही हुआ है। सुना है, उस 'विवाह' में सहयोग देने वाले और भी कई आदमियों पर आफ़त आने वाली है।

पंचराज—इसमें ताज्जुब की कोई बात नहीं है। जो आदमी जैसा काम करता है, उसे वैसा ही फल भी मिलता है। चम्पा निर्दोष थी, उसने अपना शरीर बुड्ढे वर के सुपुर्द न कर अग्नि देवता के अर्पण कर दिया! वह धन्य है। अच्छा, अब सब बातें तय हो गयीं, यह पंचायत समाप्त की जाती है। (सब लोग जाते हैं)।

स्वर्ग की सीधी सड़क !

घूमता-फिरता मैं सीधा हृषीकेश के जंगलों में जा पहुँचा। देखता क्या हूँ, एकान्त टीले पर, एक बाबाजी समाधि लगाये बैठे हैं। वे अपने ध्यान में निमग्न हैं, उन्हें कुछ भी खबर नहीं कि संसार में क्या हो रहा है, और संसार में वह हैं भी कि नहीं। मैं बाबाजी के पास आध घण्टे बैठा रहा। इतने में ही, न जाने कब की लगी हुई उनकी समाधि टूटी। बाबाजी ने मेरी ओर बड़ी दया-दृष्टि से देखा। मैंने चरणस्पर्शपूर्वक उन्हें प्रणाम किया। वे बोले—

'बच्चा !—तुम कौन हो ?'

'महाराज !—मैं भी एक सांसारिक कीट हूँ।

'यहाँ कैसे आये ?'

'आपके दर्शनों को, लौकिक ताप से तप कर आत्मिक शान्ति के लिए।'

'नहीं, अभी तुम इस बखेड़े में मत पड़ो, संसार का काम करो।'

'महाराज !—मेरी आत्मा बड़ी अशान्त रहती है, कुछ ऐसे भ्रम हैं जिनका निवारण नहीं होता।'

'अच्छा, बैठो, मैं अभी पानी पीकर तुम्हारी शङ्काओं का समाधान करता हूँ—

कुछ ही देर बाद बाबा विचित्रानन्दजी ने पानी पीकर मुझसे कहा—'बोलो तुम्हारी क्या-क्या शङ्काएँ हैं, एक-एक करके कहते जाओ।'

मैं—महाराज ! 'परोपकार' क्या है ?

बाबा—खूब आराम से रहना और पाखण्ड-पूर्वक स्वार्थ-साधना करना।

मैं—'मुक्ति' कैसे प्राप्त होती है ?

बाबा—खूब धन कमाने से।

मैं 'स्वर्ग' कहाँ है ?

बाबा—'सिविललाइन्स' में और अङ्गरेजों की कोठियों में।

मैं—'नरक' किस जगह है ?

बाबा—हिन्दुओं के घरों में।

मैं—'धर्म' क्या है ?

बाबा—संसार की सब से सस्ती और निरर्थक वस्तु।

मैं—'धर्म' कब पालन करना चाहिये ?

बाबा—मृत्यु के समय—जीवन-समाप्ति में जब सिर्फ़ १० मिनट शेष रह जायँ, तब।

मैं—ऋषि-मुनि कौन हैं ?

बाबा—जिन्होंने ३३ फ़ीसदी नम्बरों से क़ानूनी और डाक्टरी परीक्षाएं पास की हैं।

मैं—सबसे अधिक सत्यवादी कौन है ?

बाबा—कवि, सम्पादक और वकील-बैरिस्टर।

मैं—मनुष्य-जीवन का उद्देश्य क्या है ?

बाबा—कमज़ोरों को सताना और बलवानों से दब जाना।

मैं—श्राद्ध किसका करना चाहिए ?

बाबा—गौरांग महाप्रभुओं का।

मैं—मर कर जीव कहाँ जाता है ?

बाबा—धन की ढेरी पर और मोह के मन्दिर में।

मैं—पाप किसे कहते हैं ?

बाबा—बिरादरी के विरुद्ध व्यापार को।

मैं—बुद्धिमान कौन है ?

बाबा—जो धूर्त्तता से अपना काम निकाल सके।

मैं—मूर्ख की परिभाषा क्या है ?

बाबा—सीधा हो, सज्जन हो और अपने हृदय के भाव सब पर सरलता से प्रकट कर दे।

मैं—शुद्धता कहाँ है ?

बाबा—व्हिस्की के प्यालों और होटलों के निवालों में।

मैं—आचार-विचार किसे कहते हैं ?

बाबा—उछल कर चौके में जाने और धोकर लकड़ी जलाने को।

मैं—जीवन की सफलता किसमें है ?

बाबा—ढोंग रचने और धूम मचाने में।

मैं—बहादुर कौन है ?

बाबा—जो अवसर आने पर जान बचा कर भाग जाता है।

में—प्रतापी नरेश कौन है ?

बाबा—जो दीन प्रजा को सदैव पराधीन बनाए रक्खे।

मैं—नेता किसे कहते हैं ?

बाबा—जो सदैव अपने ही व्यक्तित्व का ध्यान रखता है और अपनी ही बात चलाता है। लोकमत का तनक भी आदर नहीं करता।

मैं—आध्यात्मिक ज्ञान की सर्वोत्तम पोथी कौन-सी है ?

बाबा—आल्हा-ऊदल के साँग, तुकहीन तुकबन्दियाँ और भौंगा भजनीकों का 'भजन-तमंचा'।

मैं—वेदों को उचित आदर कहाँ दिया जाता है ?

बाबा—मुद्रण यन्त्रालयों के गोदामों और वेद-भक्तों की अलमारियों में।

मैं—इस समय वेदों की रक्षा करने वाले कौन हैं ?

बाबा—दफ़्तरी लोग या जिल्दसाज़ ।

मैं—वेदों का प्रचार कैसे हो सकता है ?

बाबा—अख़बारों में नोटिस छपाने या बुकसेलरों की दूकानों से ।

मैं—चुनाव के समय 'वोट' किस को देना चाहिए ।

बाबा—जो खूब खुशामद करे और नोटों की पोट पाकिट में पटक दे ।

मैं—'देशभक्त' का सब से बड़ा गुण क्या है ?

बाबा—सरकार की चापलूसी और आत्मगौरव का अभाव ।

मैं—गुरुकुलों में किन्हें पढ़ाना चाहिए ?

बाबा—जिनके पिता वकील, बैरिस्टर, डाक्टर, एडीटर, लीडर, डिप्टी कलक्टर, मुन्सिफ़, प्रोफ़ैसर, सबजज और जज न हों ।

मैं—गुण-कर्म्म-स्वभाव से शादी किन्हें करनी चाहिए ?

बाबा—जिन्हें अपने जन्म के वर्ण से ऊँचे वर्ण की कन्या मिल सके ।

मैं—दान का उचित अधिकारी कौन है ?

बाबा—जो अधिक से अधिक दाता की प्रशंसा और प्रसिद्धि करने में कुशल हो ।

मैं—'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' का अर्थ क्या है ?

बाबा—कहना बहुत और करना कुछ नहीं !

मैं—घासलेटी साहित्य' का क्या अर्थ है ?

बाबा—नवयुवकों के उद्धार की अमोघ ओषधि ।

मैं—इसका सेवन किस प्रकार किया जाता है ?

बाबा—चाकलेटी चटनी के साथ ।

मैं—लोगों की पद-लोलुपता कैसे दूर हो सकती है ?

बाबा—जलसों में सभापति की कुर्सी पर बैठने और अख़बारों में प्रशंसा छपाने से ।

मैं—ईश्वर से भी बड़ी दुनिया में कौन-सी चीज़ हैं ?

बाबा—'चन्दा ! चन्दा ! चन्दा !'

मैं—सच्ची 'कर्मवीरता' क्या है ?

बाबा—जो ख़तरे से ख़ाली हो।

मैं—समाचारपत्रों का मुख्य उद्देश्य क्या होना चाहिए !

बाबा—ग्राहक-संख्या बढ़ाना और रुपया कमाना !

मैं—'संस्था' किसे कहते हैं ?

बाबा—बिना पूँजी की दूकान को।

मैं—यशस्वी चिकित्सक के क्या लक्षण हैं ?

बाबा—जो अपने जीवन में कम से कम सौ रोगियों को यमपुर पहुँचा चुका हो।

मैं—सिद्धहस्त सम्पादक किसे कहना चाहिए ?

बाबा—जिसे लेखों की चोरी करने में ज़रा भी शर्म न मालूम पड़े।

मैं—म्युनिसिपिल बोर्ड क्या है ?

बाबा—निकम्मे मेम्बरों का 'पिंजरापोल।'

मैं—डिस्ट्रिक्ट बोर्ड क्या है ?

बाबा—गाँवों के ज़मीदारों की पंचायत।

मैं—और महाराज ! कौंसिल ?

बाबा—वकील-बैरिस्टरों का 'डिबेटिंग क्लब।'

मैं—किसी पुण्य-कर्म करने का सबसे अच्छा अवसर कौन-सा है ?

बाबा—दीवानी और फ़ौजदारी दोनों कचहरियों की तातीलें हों—तब।

मैं—लीडर लोगों का कार्यक्षेत्र कहाँ तक है ?

बाबा—जहाँ-जहाँ मोटर का पहिया आसानी से जा सके, और बढिया फल खाने को मिल सकें।

मैं—हिन्दी का प्रचार कैसे होगा ?

बाबा—अँगरेज़ी लिखने, पढ़ने और बोलने से।

मैं—आनरेरी लोग कौन हैं ?

बाबा—जो नियत वेतन न लेकर भरपूर भत्ता वसूल करते रहते हैं।

मैं—जीवन-दान किन्हें देना चाहिए ?

बाबा—जो संसार में किसी काम के लायक़ न रहें।

मैं—छायावाद की सर्वोत्तम कविता कौनसी है ?

बाबा—जो स्वयम् लिखने वाले कवि की समझ में भी न आवे।

मैं—भारतवासियों के लिए सबसे अच्छे अस्त्र-शस्त्र क्या हैं ?

बाबा—सेठ साहूकारों के लिए 'पियानो' और 'हारमोनियम'। पढ़े-लिखों के लिए प्रस्तावों की 'पिस्तौल' और 'रिज़ोल्यूशनों के 'रिवाल्वर।'

महाराज, आज आपने मेरी सारी संशय-निवृत्ति करदी, अब मेरी आत्मा को परम शान्ति प्राप्त हुई है। मेरे हृदय की उद्विग्नता दूर हो गई ! आप मुझे जो आदेश देंगे, अब मैं वही करूँगा। धन्य गुरुवर, धन्य ! आज आपके दर्शन कर मेरे नेत्र और उपदेश सुनकर कान पवित्र हो गए। मैंने आपके पाद-पद्मों की पूजा कर अपने को धन्य समझा। यह सुनकर बाबा विचित्रानन्दजी बोले—'जाओ, बच्चे अब अपने घरबार की सुध लो और हमारे बताये विधान द्वारा लोक-परलोक साधो। बस, तुम इस जीवन में ही मुक्त हो जाओगे, और सदेह सीधे स्वर्ग को चले जाओगे। मैंने तुम्हें क्रिया ही ऐसी बता दी है। अच्छा, अब हम समाधि लगाते हैं।'